तुलसी का लोकसाहित्य और रामभक्ति

(Tulsi's Folklore and Devotion For Rama)

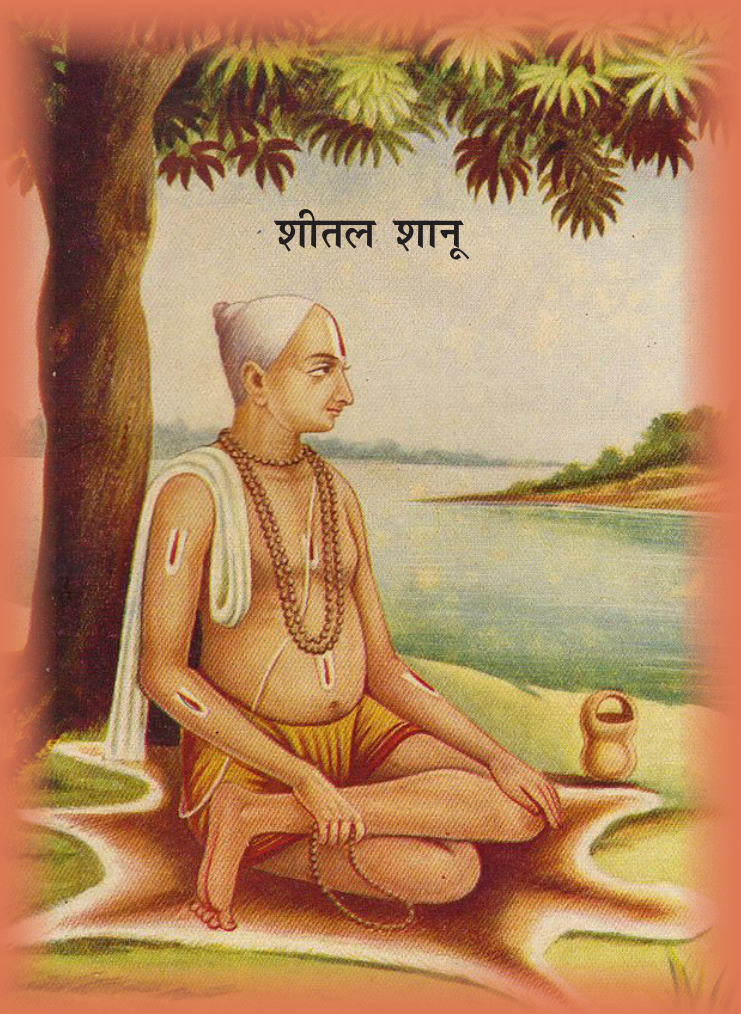

तुलसी का लोक साहित्य और राम भक्ति

तुलसी का लोक साहित्य और राम भक्ति

(Tulsi's Folklore and Devotion For Rama)

शीतल शानू

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5474-1

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के गौरवशाली कवि हैं। वे पूर्वमध्य काल की सगुण काव्य धारा से संबंध रखते हैं। उनके आराध्य देव दशरथपुत्र राम हैं। इन्हें राम भक्ति का सबसे श्रेष्ठ कवि माना जाता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में राम के प्रति अनन्य भक्ति भाव को प्रकट किया है। तुलसीदास ने विद्वानों आचार्यों द्वारा बताए गए भक्ति के आधार को स्वीकार किया और कहा कि राग और क्रोध को जीतकर नीति पथ पर चलते हुए राम की प्रीति करना ही भक्ति है। भक्ति का आलम्बन ही भक्त का ईष्ट होता है। इसीलिए तुलसी के इष्टदेव राम ही है। राम विष्णु के अवतार हैं। कहा जाता है कि जब पृथ्वी पर अनाचार की अति होती है तो भक्तों के कल्याण हेतु ईश्वर पृथ्वी पर अवतार अर्थात् साकार रूप लेकर पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। तुलसी के राम निर्गुण-सगुण दोनों ही रूपों में नजर आते हैं। (जग कारन तारन भय भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार यमानस) इनके अनुसार निर्गुण भगवान ही सगुण रूप में प्रकट होते हैं अर्थात् सगुण और निर्गुण के भेद को तुलसी नहीं मानते। (सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।।)

तुलसी ने अध्यात्म रामायण को अपना आधार माना है। इसमें विष्णु के अवतार राम के स्वरूप का विशद् वर्णन है। तुलसी ने इसे ही मानस में स्थान दिया है, जबकि वहाँ राम विष्णु के अवतार न होकर ब्रह्म के अवतार है। तुलसी ने अध्यात्म रामायण के राम के समान ही अपने मानस में राम का स्वरूप व्यक्त

किया है। तुलसी के राम अन्य देवी-देवताओं से सर्वोपरि है। वे अन्य देवी-देवताओं की भांति प्रसन्न होकर वरदान तो देते हैं, परन्तु रूष्ट होकर श्राप नहीं देते, अतः राम को यदि कोई गलती से भी स्मरण कर लें, तो भी राम उस पर अपनी सम्पूर्ण दया दृष्टि डालते हैं। राम की प्रवृति बिल्कुल विलक्षण है। उन्हें हमेशा दीन-हीन ही प्रिय होते हैं। वे शरणागत की रक्षा करने में तो अतुलनीय है। अन्य देव 'बलि पूजा' के भी भूखे होते हैं, किन्तु राम केवल प्रीति चाहते हैं अर्थात् सुमिरन से ही भला मानते हैं। राम का चरित्र समस्त सुखों को देना और दुःखों का निवारण करना ही है। राम के समान अन्य कोई भी सुर, नर, मुनि दीन लोगों की पीड़ा समझने वाला नहीं है- (दोष-दुःख-दरिद्र, दलैया दीनबन्धु राम। 'तुलसी' न दूसरो या दया निंधान दुनी मैं।।) तुलसी के राम पापियों में भी श्रेष्ठ पापी की भक्ति से भी खुश होकर उसको जन्म जमान्तर के पापों से मुक्त कर देते हैं। परम भय से युक्त व्यक्ति को तुरन्त ही भय मुक्त कर देते हैं। यहाँ तक कि विश्वद्रोह कृत अध का भार भी सिर पर लादे हुए यदि कोई राम की शरण में आता है तो वह भी त्याज्य नहीं होता, अतः राम की शरणगत-वत्सलता के प्रमाण स्वरूप दोहावली, गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका और मानस में अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं। एक माँ जिस प्रकार अपने शिशु का ध्यान रखती है स्वयं राम उसी प्रकार अपने शरणागत को ध्यान रखते हैं।

राम की परमोदारता अकथनीय है। वे बिना सेवा से भी प्रसन्न हो जाते है जिसके कारण राम अपने प्रिय जनों को वो पद दे देते हैं, जो बड़े-बड़े ऋषि मुनि विभिन्न योग, तप करके भी प्राप्त नहीं कर पाते। परम स्नेही राम ने शबरी को वह पद दिया। इतना ही नहीं जो वैभव रावण ने घोर तपस्या करके शिव की कृपा से प्राप्त किया था उसे राम सहज ही बिना संकोच के सुग्रीव को सौंप देते हैं, अहिल्या का उद्धार किया, नीच निषाद को सखा बनाकर दोनों ही लोकों में कीर्ति प्रदान की। वन्य प्राणी बन्दर-भालू को भी अपने परम स्नेह से नवाजा आदि अनेकों उदाहरण हमें राम की उदारता के तुलसी के काव्य में मिलते हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

प्रस्तावना *v*

1. तुलसीदास **1**

जन्म 1

जन्म काल 2

तुलसीदास की जन्मभूमि 3

जाति एवं वंश 3

माता-पिता 4

गुरु 4

बाल्यकाल और आर्थिक स्थिति 5

यज्ञोपवीत 6

आराध्य-दर्शन 6

रत्नावली का महाप्रस्थान 7

मीराबाई का पत्र 7

केशवदास से संबद्ध घटना 8

विरोध और सम्मान 10

बचपन 12

भगवान श्री राम जी से भेंट 13

संस्कृत में पद्य-रचना 14

रामचरितमानस की रचना 15
तुलसीदास द्वारा रचित ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण 19
रामचरितमानस में शाश्वत मूल्य-चेतना 23
सामाजिक आदर्शों की स्थापना 37
धार्मिक समन्वय 37
दासता से मुक्ति का संदेश 37
भाषा 37
2. तुलसी काव्य में भक्ति भावना 42
3. तुलसी की भक्ति-पद्धति 51
तुलसी की भक्ति-पद्धति 51
4. तुलसीदास की समन्वय भावना 61
तुलसीदास के काव्य में समन्वय भावना 67
लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना 75
5. राम काव्य परंपरा 82
राम काव्य की प्रवृत्तियाँ 82
राम का आदर्श 83
भक्ति भावना 83
भक्ति काल की पूर्व पीठिका 85
काव्य धाराएँ 87
तुलसी नवधा भक्ति 88
भक्ति की परिभाषा 89
6. तुलसीदास भक्ति 91
मध्ययुगीन काव्य का परिप्रेक्ष्य और गोस्वामी तुलसीदास 93
7. तुलसी की काव्य-कला और कवितावली 104
8. गोस्वामी तुलसीदास और उनकी साहित्य साधना 112
9. श्रीरामचरितमानस 117
संक्षिप्त मानस कथा 118
रामचरितमानस चरित-काव्य 121
राम और रावण युद्ध 123
रामचरितमानस 123
उत्कृष्ट महाकाव्य 124

रामचरितमानस में छन्दों की संख्या 124
तुलसीदास की भक्ति 125
लोकप्रिय ग्रन्थ 125
तुलनात्मक अध्ययन 126
व्यावहारिकता 127
दूसरा प्रसंग 127
रामचरितमानस की लोकप्रियता 129
रामचरितमानस की आलोचना 130
10. कवितावली **131**
रचना काल 131
साहित्यिक विशेषताएँ 132
11. गीतावली –तुलसीदास **135**
पूर्ववर्ती रूप 135
आलोचक कथन 136
सूरसागर की प्रतियाँ 136
विशिष्ट स्थान 138
12. हनुमान चालीसा **140**
अमर कृति 140
लोकप्रियता 141
मूल पाठ 141
महत्त्व 143
13. विनय-पत्रिका **144**
रामभक्ति 144
रामगीतावली 145
पदावली रामायण 145
समय निर्धारण 146
गीति साहित्य 146
रचनाक्रम की अनिश्चितता 147
जानकीनाथ, रघुनाथ 148

1

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास (1511 - 1623) हिंदी साहित्य के महान कवि थे। इनका जन्म सोरों शूकरक्षेत्र, वर्तमान में कासगंज (एटा) उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान् आपका जन्म राजापुर जिला बाँदा(वर्तमान में चित्रकूट) में हुआ मानते हैं। कुछ विद्वान तुलसीदास का जन्म गोण्डा जिला के सुकरखेत को भी मानते हैं। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया।

जन्म

अधिकांश विद्वान तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर को मानने के पक्ष में हैं। यद्यपि कुछ इसे सोरों शूकरक्षेत्र भी मानते हैं। राजापुर उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिला के अंतर्गत स्थित एक गाँव है। वहाँ आत्माराम दुबे नाम के एक प्रतिष्ठित भक्तिकाल में पुष्टिमार्गीय अष्टछाप के कवि नंददास जी का जन्म जनपद- कासगंज के सोरों शूकरक्षेत्र अन्तर्वेदी रामपुर (वर्त्तमान- श्यामपुर) गाँव निवासी भरद्वाज गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण पं. सच्चिदानंद शुक्ल के पुत्र पं0 जीवाराम शुक्ल

की पत्नी चंपा के गर्भ से सम्वत्- 1572 विक्रमी में हुआ था। पं0 सच्चिदानंद के दो पुत्र थे, पं0 आत्माराम शुक्ल और पं0 जीवाराम शुक्ल। पं0 आत्माराम शुक्ल एवं हुलसी के पुत्र का नाम महाकवि गोस्वामी तुलसीदास था, जिन्होंने श्रीरामचरितमानस महाग्रंथ की रचना की थी। नंददास जी के छोटे भाई का नाम चँदहास था। नंददास जी, तुलसीदास जी के सगे चचेरे भाई थे। नंददास जी के पुत्र का नाम कृष्णदास था। नंददास ने कई रचनाएँ- रसमंजरी, अनेकार्थमंजरी, भागवत्-दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्द्धन लीला, सुदामा चरित, विरहमंजरी, रूप मंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, भँवर गीत, सिद्धांत पंचाध्यायी, नंददास पदावली हैं। ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था। संवत् 1511 के श्रावण मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि के दिन अभुक्त मूल नक्षत्र में इन्हीं दम्पति के यहाँ तुलसीदास का जन्म हुआ। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार शिशु बारह महीने तक माँ के गर्भ में रहने के कारण अत्यधिक हृष्ट-पुष्ट था और उसके मुख में दाँत दिखायी दे रहे थे। जन्म लेने के साथ ही उसने राम नाम का उच्चारण किया जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। उनके जन्म के दूसरे ही दिन माँ का निधन हो गया। पिता ने किसी और अनिष्ट से बचने के लिये बालक को चुनियाँ नाम की एक दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गये। जब रामबोला साढ़े पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही। वह गली-गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया।

जन्म काल

महान कवि तुलसीदास की प्रतिभा-किरणों से न केवल हिन्दू समाज और भारत, बल्कि समस्त संसार आलोकित हो रहा है। बड़ा अफसोस है कि उसी कवि का जन्म-काल विवादों के अंधकार में पड़ा हुआ है। अब तक प्राप्त शोध-निष्कर्ष भी हमें निश्चितता प्रदान करने में असमर्थ दिखाई देते हैं। मूलगोसाईं-चरित के तथ्यों के आधार पर डा0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल और श्यामसुंदर दास तथा किसी जनश्रुति के आधार पर 'मानसमयंक'-कार भी 1554 का ही समर्थन करते हैं। इसके पक्ष में मूल गोसाईं-चरित की निम्नांकित पंक्तियों का विशेष उल्लेख किया जाता है।

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिंदी के तीर,
सावन सुक्ला सत्तमी, तुलसी धरेउ शरीर।

तुलसीदास की जन्मभूमि

तुलसीदास की जन्मभूमि होने का गौरव पाने के लिए अब तक राजापुर (बांदा), सोरों (एटा), हाजीपुर (चित्रकूट के निकट), तथा तारी की ओर से प्रयास किए गए हैं। संत तुलसी साहिब के आत्मोल्लेखों, राजापुर के सरयूपारीण ब्राह्मणों को प्राप्त "मुआफी' आदि बहिर्साक्ष्यों और अयोध्याकांड (मानस) के तायस प्रसंग, भगवान राम के वन गमन के क्रम में यमुना नदी से आगे बढ़ने पर व्यक्त कवि का भावावेश आदि अंतर्साक्ष्यों तथा तुलसी-साहित्य की भाषिक वृत्तियों के आधार पर रामबहोरे शुक्ल राजापुर को तुलसी की जन्मभूमि होना प्रमाणित हुआ है।

रामनरेश त्रिपाठी का निष्कर्ष है कि तुलसीदास का जन्म स्थान सोरों ही है। सोरों में तुलसीदास के स्थान का अवशेष, तुलसीदास के भाई नंददास के उत्तराधिकारी नरसिंह जी का मंदिर और वहां उनके उत्तराधिकारियों की विद्यमानता से त्रिपाठी और गुप्त जी के मत को परिपुष्ट करते हैं।

जाति एवं वंश

जाति और वंश के सम्बन्ध में तुलसीदास ने कुछ स्पष्ट नहीं लिखा है। कवितावली एवं विनयपत्रिका में कुछ पंक्तियां मिलती हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे-

दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को ।

(विनयपत्रिका)

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हों ।

मोको न लेनो न देनो कछु कलि भूलि न रावरी और चितैहौ ।।जानि के जोर करौं परिनाम तुम्हैं पछितैहौं पै मैं न भितैहैं

बाह्मण ज्यों उंगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिए न हितै हौं।

जाति-पांति का प्रश्न उठने पर वह चिढ़ गये हैं। कवितावली की निम्नांकित पंक्तियों में उनके अंतर का आक्रोश व्यक्त हुआ है-

""धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब,

काहू की जाति बिगारी न सोऊ।"
"मेरे जाति-पांति न चहौं काहू का जाति-पांति,
मेरे कोऊ काम को न मैं काहू के काम को।"

राजापुर से प्राप्त तथ्यों के अनुसार भी वे सरयूपारीण थे। तुलसी साहिब के आत्मोल्लेख एवं मिश्र बंधुओं के अनुसार वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। जबकि सोरों से प्राप्त तथ्य उन्हें सना ब्राह्मण प्रमाणित करते हैं, लेकिन "दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को' के आधार पर उन्हें शुक्ल ब्राह्मण कहा जाता है। परंतु शिवसिंह "सरोज' के अनुसार सरबरिया ब्राह्मण थे। ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने के कारण कवि ने अपने विषय में "जायो कुल मंगन' लिखा है। तुलसीदास का जन्म अर्थहीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जिसके पास जीविका का कोई ठोस आधार और साधन नहीं था। माता-पिता की स्नेहिल छाया भी सर पर से उठ जाने के बाद भिक्षाटन के लिए उन्हें विवश होना पड़ा।

माता-पिता

तुलसीदास के माता-पिता के संबंध में कोई ठोस जानकारी नहीं है। प्राप्त सामग्रियों और प्रमाणों के अनुसार उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था। किन्तु भविष्य पुराण में उनके पिता का नाम श्रीधर बताया गया है। रहीम के दोहे के आधार पर माता का नाम हुलसी बताया जाता है।

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय ।
गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सों सुत होय ॥

गुरु

तुलसीदास के गुरु के रूप में कई व्यक्तियों के नाम लिए जाते हैं। भविष्य पुराण के अनुसार राघवानंद, विलसन के अनुसार जगन्नाथ दास, सोरों से प्राप्त तथ्यों के अनुसार नरसिंह चौधरी तथा ग्रियर्सन एवं अंतर्साक्ष्य के अनुसार नरहरि तुलसीदास के गुरु थे। राघवनंद के एवं जगन्नाथ दास गुरु होने की असंभवता सिद्ध हो चुकी है। वैष्णव संप्रदाय की किसी उपलब्ध सूची के आधार पर ग्रियर्सन द्वारा दी गई सूची में, जिसका उल्लेख राघवनंद तुलसीदास से आठ पीढ़ी पहले ही पड़ते हैं। ऐसी परिस्थिति में राघवानंद को तुलसीदास का गुरु नहीं माना जा सकता।

सोरों से प्राप्त सामग्रियों के अनुसार नरसिंह चौधरी तुलसीदास के गुरु थे। सोरों में नरसिंह जी के मंदिर तथा उनके वंशजों की विद्यमानता से यह पक्ष संपुष्ट हैं। लेकिन महात्मा बेनी माधव दास के 'मूल गोसाई-चरित' के अनुसार हमारे कवि के गुरु का नाम नरहरि है।

बाल्यकाल और आर्थिक स्थिति

तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहिर्साक्ष्यों से उनके माता-पिता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर प्रकाश नहीं पड़ता। केवल "मूल गोसाई-चरित' की एक घटना से उनकी चिंत्य आर्थिक स्थिति पर क्षीण प्रकाश पड़ता है। उनका यज्ञोपवीत कुछ ब्राह्मणों ने सरयू के तट पर कर दिया था। उस उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि किसी सामाजिक और जातीय विवशता या कर्त्तव्य-बोध से प्रेरित होकर बालक तुलसी का उपनयन जाति वालों ने कर दिया था।

तुलसीदास का बाल्यकाल घोर अर्थ-दारिद्रय में बीता। भिक्षोपजीवी परिवार में उत्पन्न होने के कारण बालक तुलसीदास को भी वही साधन अंगीकृत करना पड़ा। कठिन अर्थ-संकट से गुजरते हुए परिवार में नये सदस्यों का आगमन हर्षजनक नहीं माना गया–

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाय जननी जनक को ।
बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को ।

(कवितावली)

मातु पिता जग जाय तज्यो विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई ।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि ललाई ।
राम सुभाउ सुन्यो तुलसी प्रभु, सो कह्यो बारक पेट खलाई ।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई ॥

होश संभालने के पूर्व ही जिसके सर पर से माता-पिता के वात्सल्य और संरक्षण की छाया सदा -सर्वदा के लिए हट गयी, होश संभालते ही जिसे एक मुट्ठी अन्न के लिए द्वार-द्वार बिललाने को बाध्य होना पड़ा, संकट-काल उपस्थित देखकर जिसके स्वजन-परिजन दर किनार हो गए, चार मुट्ठी चने भी जिसके लिए जीवन के चरम प्राप्य (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) बन गए, वह कैसे समझे कि विधाता ने उसके भाल में भी भलाई के कुछ शब्द लिखे हैं। उक्त पदों में व्यंजित वेदना का सही अनुभव तो उसे ही हो सकता है, जिसे उस दारुण परिस्थिति से गुजरना पड़ा हो। ऐसा ही एक पद विनय-पत्रिका में भी मिलता है–

द्वार-द्वार दीनता कही काढि रद परिपा हूं

हे दयालु, दुनी दस दिसा दुख-दोस-दलन-छम कियो संभाषन का हूं ।

तनु जन्यो कुटिल कोट ज्यों तज्यों मातु-पिता हूं ।

काहे को रोष-दोष काहि धौं मेरे ही अभाग मो सी सकुचत छुइ सब छाहूं।

तुलसीदास के जीवन की कुछ घटनाएं एवं तिथियां भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। कवि के जीवन-वृत्त और महिमामय व्यक्तित्त्व पर उनसे प्रकाश पड़ता है।

यज्ञोपवीत

मूल गोसाईं चरित के अनुसार तुलसीदास का यज्ञोपवीत माघ शुक्ला पंचमी सं0 1561 में हुआ–

1. पन्द्रह सै इकसठ माघसुदी। तिथि पंचमि औ भृगुवार उदी ।
2. सरजू तट विप्रन जग्य किए। द्विज बालक कहं उपबीत किए ।।
3. कवि के माता-पिता की मृत्यु कवि के बाल्यकाल में ही हो गई थी।

विवाह

जनश्रुतियों एवं रामायणियों के विश्वास के अनुसार तुलसीदास विरक्त होने के पूर्व भी कथा-वाचन करते थे। युवक कथावाचक की विलक्षण प्रतिभा और दिव्य भगवद्भक्ति से प्रभावित होकर रत्नावली के पिता पं0 दीन बंधु पाठक ने एक दिन, कथा के अन्त में, श्रोताओं के विदा हो जाने पर, अपनी बारह वर्षीया कन्या उसके चरणों में सौंप दी। मूल गोसाईं चरित के अनुसार रत्नावली के साथ युवक तुलसी का यह वैवाहिक सूत्र सं0 1583 की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी, दिन गुरुवार को जुड़ा था–

पंद्रह सै पार तिरासी विषै ।
सुभ जेठ सुदी गुरु तेरसि पै ।
अधिराति लगै जु फिरै भंवरी ।
दुलहा दुलही की परी पंवरी।।

आराध्य-दर्शन

भक्त शिरोमणि तुलसीदास को अपने आराध्य के दर्शन भी हुए थे। उनके जीवन के वे सर्वोत्तम और महत्तम क्षण रहे होंगे। लोक-श्रुतियों के अनुसार

तुलसीदास को आराध्य के दर्शन चित्रकूट में हुए थे। आराध्य युगल राम-लक्ष्मण को उन्होंने तिलक भी लगाया था–

चित्रकूट के घाट पै, भई संतन के भीर ।
तुलसीदास चंदन घिसै, तिलक देत रघुबीर॥

मूल गोसाईं चरित के अनुसार कवि के जीवन की वह पवित्रतम तिथि माघ अमावस्या (बुधवार), सं0 1607 को बताया गया है।

सुखद अमावस मौनिया, बुध सोरह सै सात ।
जा बैठे तिसु घाट पै, विरही होतहि प्रात॥

गोस्वामी तुलसीदास के महिमान्वित व्यक्तित्त्व और गरिमान्वित साधना को ज्योतित करने वाली एक और घटना का उल्लेख मूल गोसाईं चरित में किया गया है। तुलसीदास नंददास से मिलने बृंदावन पहुंचे। नंददास उन्हें कृष्ण मंदिर में ले गए। तुलसीदास अपने आराध्य के अनन्य भक्त थे। तुलसीदास राम और कृष्ण की तात्त्विक एकता स्वीकार करते हुए भी राम-रूप श्यामघन पर मोहित होने वाले चातक थे, अतः घनश्याम कृष्ण के समक्ष नतमस्तक कैसे होते। उनका भाव-विभोर कवि का कण्ठ मुखर हो उठा–

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बान लो हाथ॥

इतिहास साक्षी दे या नहीं दे, किन्तु लोक-श्रुति साक्षी देती है कि कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति में बदल गई थी।

रत्नावली का महाप्रस्थान

रत्नावली का बैकुंठगमन 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार सं0 1589 में हुआ। किंतु राजापुर की सामग्रियों से उसके दीर्घ जीवन का समर्थन होता है।

मीराबाई का पत्र

महात्मा बेनी माधव दास ने मूल गोसाईं चरित में मीराबाई और तुलसीदास के पत्राचार का उल्लेख किया किया है। अपने परिवार वालों से तंग आकर मीराबाई ने तुलसीदास को पत्र लिखा। मीराबाई ने पत्र के द्वारा तुलसीदास से दीक्षा ग्रहण करनी चाही थी। मीरा के पत्र के उत्तर में विनयपत्रिका के निम्नांकित पद की रचना की गई।

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।
सो छोड़िये
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी ।
बलिगुरु तज्यो कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद मंगलकारी ।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं ।
अंजन कहां आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहां लौं ।
तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों हाय सनेह राम-पद, एतोमतो हमारो ॥

तुलसीदास ने मीराबाई को भक्ति-पथ के बाधकों के परित्याग का परामर्श दिया था।

केशवदास से संबद्ध घटना

मूल गोसाई चरित के अनुसार केशवदास गोस्वामी तुलसीदास से मिलने काशी आए थे। उचित सम्मान न पा सकने के कारण वे लौट गए।

अकबर के दरबार में बंदी बनाया जाना

तुलसीदास की ख्याति से अभिभूत होकर अकबर ने तुलसीदास को अपने दरबार में बुलाया और कोई चमत्कार प्रदर्शित करने को कहा। यह प्रदर्शन-प्रियता तुलसीदास की प्रकृति और प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी, अतः ऐसा करने से उन्होंने इंकार कर दिया। इस पर अकबर ने उन्हें बंदी बना लिया। तदुपरांत राजधानी और राजमहल में बंदरों का अभूतपूर्व एवं अद्‌भुत उपद्रव शुरू हो गया। अकबर को बताया गया कि यह हनुमान जी का क्रोध है। अकबर को विवश होकर तुलसीदास को मुक्त कर देना पड़ा।

जहांगीर को तुलसी-दर्शन

जिस समय वे अनेक विरोधों का सामना कर सफलताओं और उपलब्धियों के सर्वोच्च शिखर का स्पर्श कर रहे थे, उसी समय दर्शनार्थ जहांगीर के आने का उल्लेख किया गया मिलता है।

दांपत्य जीवन

सुखद दांपत्य जीवन का आधार अर्थ प्राचुर्य नहीं, पति -पत्नी का पारस्परिक प्रेम, विश्वास और सहयोग होता है। तुलसीदास का दांपत्य जीवन आर्थिक विपन्नता के बावजूद संतुष्ट और सुखी था। भक्तमाल के प्रियादास की टीका से पता चलता है कि जीवन के वसंत काल में तुलसी पत्नी के प्रेम में सराबोर थे। पत्नी का वियोग उनके लिए असह्य था। उनकी पत्नी-निष्ठा दिव्यता को उल्लंघित कर वासना और आसक्ति की ओर उन्मुख हो गई थी।

रत्नावली के मायके चले जाने पर शव के सहारे नदी को पार करना और सर्प के सहारे दीवाल को लांघकर अपनी पत्नी के निकट पहुंचना। पत्नी की फटकार ने भोगी को जोगी, आसक्त को अनासक्त, गृहस्थ को संन्यासी और भांग को भी तुलसीदल बना दिया। वासना और आसक्ति के चरम सीमा पर आते ही उन्हें दूसरा लोक दिखाई पड़ने लगा। इसी लोक में उन्हें मानस और विनयपत्रिका जैसी उत्कृष्टतम रचनाओं की प्रेरणा और सिसृक्षा मिली।

वैराग्य की प्रेरणा

तुलसीदास के वैराग्य ग्रहण करने के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम, अतिशय आसक्ति और वासना की प्रतिक्रिया ओर दूसरा, आर्थिक विपन्नता। पत्नी की फटकार ने उनके मन के समस्त विकारों को दूर कर दिया। दूसरे कारण विनयपत्रिका के निम्नांकित पदांशों से प्रतीत होता है कि आर्थिक संकटों से परेशान तुलसीदास को देखकर सन्तों ने भगवान राम की शरण में जाने का परामर्श दिया-

दुखित देखि संतन कह्यो, सोचौ जनि मन मोहूं

तो से पसु पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर निबाहूं ।।तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति विनाहू ।

नाम की महिमा, सीलनाथ को, मेरो भलो बिलोकि, अबतें ।।

रत्नावली ने भी कहा था कि इस अस्थि-चर्ममय देह में जैसी प्रीति है, ऐसी ही प्रीति अगर भगवान राम में होती तो भव-भीति मिट जाती। इसीलिए वैराग्य की मूल प्रेरणा भगवदाराधन ही है।

तुलसी का निवास-स्थान

विरक्त हो जाने के उपरांत तुलसीदास ने काशी को अपना मूल निवास-स्थान बनाया। वाराणसी के तुलसीघाट, घाट पर स्थित तुलसीदास द्वारा

स्थापित अखाड़ा, मानस और विनय-पत्रिका के प्रणयन-कक्ष, तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त होने वाली नाव के शेषांग, मानस की 1704 ई0 की पांडुलिपि, तुलसीदास की चरण-पादुकाएं आदि से पता चलता है कि तुलसीदास के जीवन का सर्वाधिक समय यहीं बीता। काशी के बाद कदाचित् सबसे अधिक दिनों तक अपने आराध्य की जन्मभूमि अयोध्या में रहे। मानस के कुछ अंश का अयोध्या में रचा जाना इस तथ्य का पुष्कल प्रमाण है।

तीर्थाटन के क्रम में वे प्रयाग, चित्रकूट, हरिद्वार आदि भी गए। बालकांड के "दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि-भरि कांवर चले कहारा" तथा "सूखत धान परा जनु पानी" से उनका मिथिला-प्रवास भी सिद्ध होता है। धान की खेती के लिए भी मिथिला ही प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है। धान और पानी का संबंध-ज्ञान बिना मिथिला में रहे तुलसीदास कदाचित् व्यक्त नहीं करते। इससे भी साबित होता है कि वे मिथिला में रहे।

विरोध और सम्मान

जनश्रुतियों और अनेक ग्रंथों से पता चलता है कि तुलसीदास को काशी के कुछ अनुदार पंडितों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था। उन पंडितों ने रामचरितमानस की पांडुलिपि को नष्ट करने और हमारे कवि के जीवन पर संकट ढालने के भी प्रयास किए थे। जनश्रुतियों से यह भी पता चलता है कि रामचरितमानस की विमलता और उदात्तता के लिए विश्वनाथ जी के मन्दिर में उसकी पांडुलिपि रखी गई थी और भगवान विश्वनाथ का समर्थन मानस को मिला था। अन्ततः, विरोधियों को तुलसी के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। विरोधों का शमन होते ही कवि का सम्मान दिव्य-गंध की तरह बढ़ने और फैलने लगा। कवि के बढ़ते हुए सम्मान का साक्ष्य कवितावली की निम्नांकित पंक्तियां भी देती हैं–

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागिबस
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो ।
मानस वचनकाय किए पाप सति भाय
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो ।
राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो ।

अति ही अभागो अनुरागत न राम पद
मूढ़ एतो बढ़ो अचरज देखि सुनी सो ॥

तुलसी अपने जीवन-काल में ही वाल्मीकि के अवतार माने जाने लगे थे–

त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन ।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन ॥
पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी ।
राम चरण रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी ।
संसार अपार के पार को सगुन रूप नौका लिए ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भए ॥

पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक श्री मधुसूदन सरस्वती को तुलसीदास का समसामयिक बताया है। उनके साथ उनके वाद-विवाद का उल्लेख किया है और मानस तथा तुलसी की प्रशंसा में लिखा उनका श्लोक भी उद्धृत किया है। उस श्लोक से भी तुलसीदास की प्रशस्ति का पता मालूम होता है।

आनन्दकाननेह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः
कविता मंजरी यस्य, राम-भ्रमर भूषिता।

जीवन की सांध्य वेला

तुलसीदास को जीवन की सांध्य वेला में अतिशय शारीरिक कष्ट हुआ था। तुलसीदास बाहु की पीड़ा से व्यथित हो उठे तो असहाय बालक की भांति आराध्य को पुकारने लगे थे।

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं,
बासर जलद घन घटा धुकि धाई है ।
बरसत बारि पोर जारिये जवासे जस,
रोष बिनु दोष, धूम-मूलमलिनाई है ॥
करुनानिधान हनुमान महा बलबान,
हेरि हैसि हांकि फूंकि फौजें तै उड़ाई है ।
खाए हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है ।

निम्नांकित पद से तीव्र पीड़ा की अनुभूति और उसके कारण शरीर की दुर्दशा का पता चलता हैं–

पायेंपीर पेटपीर बांहपीर मुंहपीर
जर्जर सकल सरी पीर मई है ।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,

मोहि पर दवरि दमानक सी दई है ।।हौं तो बिन मोल के बिकानो बलि बारे हीं तें,

ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है ।
कुंभज के निकट बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय राम रा ऐरती हाल कहुं भई है॥

दोहावली के तीन दोहों में बाहु-पीड़ा की अनुभूति–

तुलसी तनु सर सुखजलज, भुजरुज गज बर जोर ।
दलत दयानिधि देखिए, कपिकेसरी किसोर ॥
भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रबेस ।
बिहगराज बाहन तुरत, काढिअ मिटे कलेस ॥
बाहु विटप सुख विहंग थलु, लगी कुपीर कुआगि ।
राम कृपा जल सींचिए, बेगि दीन हित लागि ॥

आजीवन काशी में भगवान विश्वनाथ का राम कथा का सुधापान कराते-कराते असी गंग के तीर पर सं0 1680 की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन तुलसीदास पांच भौतिक शरीर का परित्याग कर शाश्वत यश:शरीर में प्रवेश कर गए।

बचपन

भगवान शंकर जी की प्रेरणा से रामशैल पर रहने वाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने इस रामबोला के नाम से बहुचर्चित हो चुके इस बालक को ढूँढ निकाला और विधिवत् उसका नाम तुलसीराम रखा। तदुपरान्त वे उसे अयोध्या (उत्तर प्रदेश) ले गये और वहाँ संवत् 1561 माघ शुक्ला पंचमी (शुक्रवार) को उसका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराया। संस्कार के समय भी बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री-मन्त्र का स्पष्ठ उच्चारण किया, जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद नरहरि बाबा ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके बालक को राम-मन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराया। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह एक ही बार में गुरु-मुख से जो सुन लेता, उसे वह

कंठस्थ हो जाता। वहाँ से कुछ काल के बाद गुरु-शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे। वहाँ नरहरि बाबा ने बालक को राम-कथा सुनायी किन्तु वह उसे भली-भाँति समझ न आयी।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी, गुरुवार, संवत् 1583 को 29 वर्ष की आयु में राजापुर से थोड़ी ही दूर यमुना के उस पार स्थित एक गाँव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली के साथ उनका विवाह हुआ। चूँकि गौना नहीं हुआ था, अतः कुछ समय के लिये वे काशी चले गये और वहाँ शेष सनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गये। वहाँ रहते हुए अचानक एक दिन उन्हें अपनी पत्नी की याद आयी और वे व्याकुल होने लगे। जब नहीं रहा गया तो गुरु जी से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि राजापुर लौट आये। पत्नी रत्नावली चूँकि मायके में ही थी क्योंकि तब तक उनका गौना नहीं हुआ था, अतः तुलसीराम ने भयंकर अँधेरी रात में उफनती यमुना नदी तैरकर पार की और सीधे अपनी पत्नी के शयन-कक्ष में जा पहुँचे। रत्नावली इतनी रात गये अपने पति को अकेले आया देख कर आश्चर्यचकित हो गयी। उसने लोक-लज्जा के भय से जब उन्हें चुपचाप वापस जाने को कहा तो वे उससे उसी समय घर चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खीझकर रत्नावली ने स्व-रचित एक दोहे के माध्यम से, जो शिक्षा उन्हें दी उसने ही तुलसीराम को तुलसीदास बना दिया। रत्नावली ने जो दोहा कहा था वह इस प्रकार है–

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति !
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव-भीत ?

यह दोहा सुनते ही उन्होंने उसी समय पत्नी को वहीं उसके पिता के घर छोड़ दिया और वापस अपने गाँव राजापुर लौट गये। राजापुर में अपने घर जाकर जब उन्हें यह पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पिता भी नहीं रहे और पूरा घर नष्ट हो चुका है तो उन्हें और भी अधिक कष्ट हुआ। उन्होंने विधि-विधान पूर्वक अपने पिता जी का श्राद्ध किया और गाँव में ही रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे।

भगवान श्री राम जी से भेंट

कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुनः काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम-कथा सुनाने लगे। कथा के दौरान उन्हें एक दिन मनुष्य के वेष में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से

मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथ जी का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमान जी ने कहा- 'तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथ जी दर्शन होंगें।' इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े।

चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदास उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके। तभी पीछे से हनुमानजी ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे। इस पर हनुमानजी ने उन्हें सात्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।

संवत् 1607 की मौनी अमावस्या को बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्री राम जी पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास से कहा-'बाबा! हमें चन्दन चाहिये क्या आप हमें चन्दन दे सकते हैं?' हनुमान जी ने सोचा, कहीं वे इस बार भी धोखा न खा जायें, इसलिये उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा:-

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर॥

तुलसीदास भगवान श्री राम जी की उस अद्‌भुत छवि को निहार कर अपने शरीर की सुध-बुध ही भूल गये। अन्ततोगत्वा भगवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

संस्कृत में पद्य-रचना

संवत् 1628 में वह हनुमान जी की आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयाग में माघ मेला लगा हुआ था। वे वहाँ कुछ दिन के लिये ठहर गये। पर्व के छः दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्र में अपने गुरु से सुनी थी। माघ मेला समाप्त होते ही तुलसीदास जी प्रयाग से पुनः वापस काशी आ गये और वहाँ के प्रह्लाद घाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया। वहीं रहते हुए उनके अन्दर कवित्व-शक्ति का प्रस्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य-रचना करने लगे। परन्तु दिन में वे जितने पद्य रचते,

रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदास जी को स्वप्न हुआ। भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो। तुलसीदास जी की नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदास जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इस पर प्रसन्न होकर शिव जी ने कहा- 'तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्ध्यान हो गये। तुलसीदास जी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से सीधे अयोध्या चले गये।

रामचरितमानस की रचना

संवत् 1631 का प्रारम्भ हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छ्ब्बीस दिन में यह अद्‌भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत् 1633 के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

तुलसीदास पर भारत सरकार द्वारा जारी डाक टिकट

इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ-मन्दिर में रख दी गयी। प्रातःकाल जब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया-सत्यं शिवं सुन्दरम् जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की आवाज भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आस-पास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा समान लुटा दिया और

पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौ रत्नों में एक) के यहाँ रखवा दी। इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर काशी के पण्डितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वती नाम के महापण्डित को उस पुस्तक को देखकर अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। मधुसूदन सरस्वती जी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर अपनी ओर से यह टिप्पणी लिख दी-

आनन्दकानने ह्यास्मिंजंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

इसका हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है-'काशी के आनन्द-वन में तुलसीदास साक्षात् चलता-फिरता तुलसी का पौधा है। उसकी काव्य-मंजरी बड़ी ही मनोहर है, जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा सदा मँडराता रहता है।'

पण्डितों को उनकी इस टिप्पणी पर भी संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का एक अन्य उपाय सोचा गया। काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है। अब तो सभी पण्डित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा माँगी और भक्ति-भाव से उनका चरणोदक लिया।

मृत्यु

तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय-पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया।

संवत् 1680 में श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को तुलसीदास जी ने 'राम-राम' कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

तुलसी-स्तवन

तुलसीदास जी की हस्तलिपि अत्यधिक सुन्दर थी लगता है जैसे उस युग में उन्होंने कैलोग्राफी की कला आती थी। उनके जन्म-स्थान राजापुर के एक मन्दिर में श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है। उसी प्रति के साथ रखे हुए एक कवि मदनलाल वर्मा 'क्रान्त' की हस्तलिपि में तुलसी के व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित दो छन्द भी उल्लेखनीय हैं जिन्हें हिन्दी अकादमी दिल्ली की पत्रिका इन्द्रप्रस्थ भारती ने सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इनमें पहला छन्द सिंहावलोकन है जिसकी विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण जिस शब्द से समाप्त होता है उससे आगे का उसी से प्रारंभ होता है। प्रथम व अन्तिम शब्द भी एक ही रहता है। काव्यशास्त्र में इसे अद्‌भुत छन्द कहा गया है। यही छन्द एक अन्य पत्रिका साहित्य परिक्रमा के तुलसी जयन्ती विशेषांक में भी प्रकाशित हुए थे वहीं से उद्धृत किये गये हैं

तुलसी ने मानस लिखा था जब जाति-पाँति-सम्प्रदाय-ताप से धरम-धरा झुलसी।

झुलसी धरा के तृण-संकुल पे मानस की पावसी-फुहार से हरीतिमा-सी हुलसी।

हुलसी हिये में हरि-नाम की कथा अनन्त सन्त के समागम से फूली-फली कुल-सी।

कुल-सी लसी जो प्रीति राम के चरित्र में तो राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

आत्मा थी राम की पिता में सो प्रताप-पुन्ज आप रूप गर्भ में समाय गये तुलसी।

जन्मते ही राम-नाम मुख से उचारि निज नाम रामबोला रखवाय गये तुलसी।

रत्नावली-सी अर्द्धांगिनी सों सीख पाय राम सों प्रगाढ़ प्रीति पाय गये तुलसी।

मानस में राम के चरित्र की कथा सुनाय राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

तुलसीदास की रचनाएँ

अपने 126 वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रन्थों की रचनाएँ कीं -

रामललानहछू, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, रामचरितमानस, सतसई, पार्वती-मंगल, गीतावली, विनय-पत्रिका, कृष्ण-गीतावली, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली।

इनमें से रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी कृतियों के विषय में किसी कवि की यह आर्षवाणी सटीक प्रतीत होती है - पश्य देवस्य काव्यं, न मृणोति न जीर्यति। अर्थात् देवपुरुषों का काव्य देखिये जो न मरता न पुराना होता है।

लगभग चार सौ वर्ष पूर्व तुलसीदास जी ने अपनी कृतियों की रचना की थी। आधुनिक प्रकाशन-सुविधाओं से रहित उस काल में भी तुलसीदास का काव्य जन-जन तक पहुँच चुका था। यह उनके कवि रूप में लोकप्रिय होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मानस जैसे वृहद् ग्रन्थ को कण्ठस्थ करके सामान्य पढ़े-लिखे लोग भी अपनी शुचिता एवं ज्ञान के लिए प्रसिद्ध होने लगे थे।

रामचरितमानस तुलसीदास जी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, इसलिए प्रामाणिक रचनाओं के सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य का अभाव दिखायी देता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार हैं-

रामचरितमानस
रामललानहछू
वैराग्य-संदीपनी
बरवै रामायण
पार्वती-मंगल
जानकी-मंगल
रामाज्ञाप्रश्न
दोहावली
कवितावली
गीतावली
श्रीकृष्ण-गीतावली
विनय-पत्रिका
सतसई
छंदावली रामायण
कुंडलिया रामायण

राम शलाका
संकट मोचन
करखा रामायण
रोला रामायण
झूलना
छप्पय रामायण
कवित्त रामायण
कलिधर्माधर्म निरुपण
हनुमान चालीसा

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स' में ग्रियर्सन ने भी उपरोक्त प्रथम बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

तुलसीदास द्वारा रचित ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण

तुलसीदास जी ने सवा सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त किया था। यही कारण है कि इतने अधिक समृद्धिशाली साहित्य से हिन्दी की रिक्त प्राय गोद को भरने में समर्थ हो सके। तुलसी का समस्त जीवन साहित्य-साधना एवं कष्टों का जीवन था। रचनायें इस प्रकार है:-

रामललानहछू

यह संस्कार गीत है। इस गीत में कतिपय उल्लेख राम-विवाह की कथा से भिन्न हैं।

गोद लिहैं कौशल्या बैठि रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस, पर आंचर हो।।

वैराग्य संदीपनी

वैराग्य संदीपनी को माताप्रसाद गुप्त ने अप्रामाणिक माना है, पर आचार्य चंद्रवली पांडे इसे प्रामाणिक और तुलसी की आरंभिक रचना मानते हैं। कुछ और प्राचीन प्रतियों के उपलब्ध होने से ठोस प्रमाण मिल सकते हैं। संत महिमा वर्णन का पहला सोरठा पेश है -

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत।
जिन्हके विमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत।।

बरवै रामायण

विद्वानों ने इसे तुलसी की रचना घोषित किया है। शैली की दृष्टि से यह तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी खंडित प्रति ही ग्रंथावली में संपादित है।

पार्वती-मंगल

यह तुलसी की प्रामाणिक रचना प्रतीत होती है। इसकी काव्यात्मक प्रौढ़ता तुलसी सिद्धांत के अनुकूल है। कविता सरल, सुबोध रोचक और सरस है। 'जगत मातु पितु संभु भवानी' की शृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। लोक रीति इतनी यथास्थिति से चित्रित हुई है कि यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भक्त्यात्मक भूमिका पर विरचित कथा काव्य है। व्यवहारों की सुष्ठुता, प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यन्त संतुष्ट थे, इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है –

प्रेम पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि।।

जानकी-मंगल

विद्वानों ने इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। पर इसमें भी क्षेपक है।

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाँटहि आँखि देखाइ कोप दारुन किए।।
राम कीन्ह परितोष रोस रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि।।
रघुबर भुजबल देख उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह।।

तुलसी के मानस के पूर्व वाल्मीकीय रामायण की कथा ही लोक प्रचलित थी। काशी के पंडितों से मानस को लेकर तुलसीदास का मतभेद और मानस की प्रति पर विश्वनाथ का हस्ताक्षर संबंधी जनश्रुति प्रसिद्ध है।

रामाज्ञा प्रश्न

यह ज्योतिष शास्त्रीय पद्धति का ग्रंथ है। दोहों, सप्तकों और सर्गों में विभक्त यह ग्रंथ रामकथा के विविध मंगल एवं अमंगलमय प्रसंगों की मिश्रित रचना है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व नगण्य है। सभी इसे तुलसीकृत मानते हैं। इसमें कथा-शृंखला का अभाव है और वाल्मीकीय रामायण के प्रसंगों का अनुवाद अनेक दोहों में है।

दोहावली

दोहावली में अधिकांश दोहे मानस के हैं। कवि ने चातक के व्याज से दोहों की एक लंबीशृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है। दोहावली दोहा संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान है। संभव है कुछ दोहे इसमें भी प्रक्षिप्त हों, पर रचना की अप्रामाणिकता असंदिग्ध है।

कवितावली

कवितावली तुलसीदास की रचना है, पर सभा संस्करण अथवा अन्य संस्करणों में प्रकाशित यह रचना पूरी नहीं प्रतीत होती है। कवितावली एक प्रबंध रचना है। कथानक में अप्रासंगिकता एवं शिथिलता तुलसी की कला का कलंक कहा जायेगा।

गीतावली

गीतावली में गीतों का आधार विविध कांड का रामचरित ही रहा है। यह ग्रंथ रामचरितमानस की तरह व्यापक जनसम्पर्क में कम गया प्रतीत होता है। इसलिए इन गीतों में परिवर्तन-परिवर्द्धन दृष्टिगत नहीं होता है। गीतावली में गीतों के कथा - संदर्भ तुलसी की मति के अनुरूप हैं। इस दृष्टि से गीतावली का एक गीत लिया जा सकता है -

कैकेयी जौ लौं जियत रही।
तौ लौं बात मातु सों मुह भरि भरत न भूलि कही॥
मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँसन गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही॥
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही॥

इसमें भरत और राम के शील का उत्कर्ष तुलसीदास ने व्यक्त किया है। गीतावली के उत्तरकांड में मानस की कथा से अधिक विस्तार है। इसमें सीता का वाल्मीकि आश्रम में भेजा जाना वर्णित है। इस परित्याग का औचित्य निर्देश इन पंक्तियों में मिलता है–

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहीं और अनघ उपाउ॥
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भांति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ॥

श्रीकृष्ण गीतावली

श्रीकृष्ण गीतावली भी गोस्वामी जी की रचना है। श्रीकृष्ण-कथा के कतिपय प्रकरण गीतों के विषय हैं।

हनुमानबाहुक

यह गोस्वामी जी की हनुमत-भक्ति संबंधी रचना है। पर यह एक स्वतंत्र रचना है। इसके सभी अंश प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास को राम प्यारे थे, राम की कथा प्यारी थी, राम का रूप प्यारा था और राम का स्वरूप प्यारा था। उनकी बुद्धि, राग, कल्पना और भावुकता पर राम की मर्यादा और लीला का आधिपत्य था। उनक आंखों में राम की छवि बसती थी। सब कुछ राम की पावन लीला में व्यक्त हुआ है, जो रामकाव्य की परम्परा की उच्चतम उपलब्धि है। निर्दिष्ट ग्रंथों में इसका एक रस प्रतिबिंब है।

तुलसीदास के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएं

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल वाल्मीकीय रामायण को आर्य काव्य का आदर्श मानते हैं। 'मानस' में तुलसीदास धर्मोपदेष्टा और नीतिकार के रूप में सामने आते हैं। वह ग्रंथ एक धर्मग्रंथ के रूप में भी लिखा गया है।

वास्तव में 'रामायण' धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अमृतमय रूप है तो 'रामचरितमानस' रामभक्ति की श्रद्धा की सरयू एवं भक्ति की भागीरथी है। 'रामचरितमानस' शाश्वत जीवन मूल्यों का आकाशदीप है। प्रत्येक संस्कृति के कुछ ऐसे शाश्वत नियम, उपनियम एवं परंपराएँ होती हैं, जो इसकी आधारशिला होती है। व्यक्ति के निजी जीवन, समाज एवं राष्ट्र को निर्मल, समुन्नत एवं

आदर्शलक्षी बनाने के लिए ऐसे नियम विवेकपूर्ण जीवनरीति- नीति के मार्गदर्शक होते हैं। ऐसे मानदंड निर्धारित करने में धर्मग्रंथों, शास्त्रग्रंथों एवं जीवन-मूल्यनिष्ठ साहित्यिक रचनाएँ सहायक होती हैं। ये मूल्य समाज एवं राष्ट्र की आकांक्षाएँ होते हैं।

भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जीवन के मूल्यों के रूप में उल्लेखित करते हुए 'मोक्ष' को नि:श्रेयस की प्राप्ति का सर्वोत्तम लक्ष्य माना गया। 'श्रीमद्भागवत' में धर्म के 30 लक्षण बताए गये हैं - 'सत्य, दया, तपस्या, पवित्रता, कष्ट सहने की क्षमता, उचित-अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदृष्टि, सेवा, उदानसीनता, मौन, आत्मचिंतन, समी प्राणियों में अपने आराध्य को देखना और उन्हें अन्न देना, महापुरुषों का संग, ईशगुणों का गायन, ईश्वर-सेवा, पूजा और निर्वाह, ईश के प्रति दास्यभाव, ईशवंदना, सखा भाव और ईश को आत्म-समर्पण।' किन्तु इन में से बहुत कम मूल्य ऐसे होंगे, जो सर्वदेशीय हों एवं वर्तमान भारतीय समाज के लिए भी संगत और उपादेय हों।

किन्तु मनुस्मृति में धर्म के दस भेद किए गये हैं–यथा- धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध–

धृतिःक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहं।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्॥

ये लक्षण शाश्वत जीवन मूल्यपरक हैं, जो सभी समाजों, देशों के लिए आवकार्य हो सकते हैं। तुलसीकृत रामचरितमानस उनकी विराट प्रतिभा का साधनाजन्य वह पुरस्कार है, जो व्यक्ति के इहलोक एवं परलोक सुधारने की अद्वितीय क्षमता रखता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'अग्निपुराण' के वचन का उल्लेख करते हुए कहा है, ''नरत्वं दुलर्भं लोक, लोके विद्या सुदुर्लभा, कवित्वं दुलर्भं तत्र, शक्तिस्तत्र दुलर्भा।'' महाकवि तुलसीदास को उक्त चारों विभूतियाँ परिप्राप्त थीं और इन का सदुपयोग उन्होंने 'सर्वजनहिताय' ही किया

रामचरितमानस में शाश्वत मूल्य-चेतना

चाहे राजा हो या प्रजा, स्वामी हो या सेवक, संसारी हो या संन्यासी जब तक उस का मन 'भगवत्-मन' नहीं बनेगा, तब तक कोई भी व्यक्ति जीवन की सार्थकता का परितोष प्राप्त नहीं कर सकेगा और जीवन में सार्थकता का अहसास तभी होगा, जब वह सत्यनिष्ठ होगा, सदाचार-निष्ठ होगा। जो

साहित्यकार साहित्य में मूल्यों के निरुपण का दृष्टिकोण रखेगा, वह सत्यं, शिवम्, सुंदरम् के आदर्श को अपनी रचनाओं के लिए आवश्यक मानेगा। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने साहित्य में मूल्यों का समर्थन करते हुए कहा है कि "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो मनुष्य को दुर्गति, हीनता एवं परमुखापेक्षता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।" मूल्यवादी समीक्षक आई - ए रिचर्डसन ने भी काव्य में मूल्यों का जोरदार समर्थन करते हुए कहा कि "कला का मूल्य इस बात में है कि यह हमारे आवेगों में संमति और सन्तुलन स्थापित करे, हमारी अनुभूतियों के क्षेत्र को व्यापक बनाए तथा मनुष्य को परस्पर सहयोग के लिए प्रेरित करे।" तुलसी का साहित्यिक दृष्टिकोण कलालक्षी नहीं, जीवनलक्षी था। उन्होंने उस भक्ति को आदर्श स्वरूप माना, जिसमें श्रेय एवं प्रेय का समन्वय हो। तुलसी कभी किसी वाद के चौखटे में परिबद्ध नहीं रहे, क्योंकि वे सत्यग्रहणलक्षी साधक थे। इसलिए वे मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति एवं जीवन की सार्थकता विषयक एक समन्वित दृष्टिकोण 'रामचरितमानस' में प्रस्तुत कर सके। विविध आदर्शों एवं समन्वयात्मक दृष्टि के कारण ही तुलसी का लोक-नायकत्व स्वयं सिद्ध होता है। वास्तव में गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दू धर्म में निरन्तर उत्पन्न हो रहे मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों और सामाजिक वैषम्य को दूर करके एक आदर्श समाज की कल्पना रामचरित मानस में की हैं । वे शुभ को ही जीवन का 'मूल्य' मानते हैं इसलिए उनका साहित्य मानव मूल्यों के जय जयकार के प्रति समर्पित है महादेवी वर्मा ने 'संस्कृति और जीवनमूल्य' की चर्चा करते हुए कहा था कि "वास्तव में थोड़े-से सिद्धान्त में, जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं, हम उन्हीं को जीवन मूल्य कहते हैं। वास्तव में ऐसे जीवन मूल्य ही मानवीय आवश्यकताओं की तुष्टि के साथ लोकमंगल तथा आत्मोपलब्धि की सिद्धि में सहायक होते हैं।" 'उन्होंने लोकमांगल्य की भावना से प्रेरित होकर सामाजिक मर्यादा का स्वरूप निश्चित किया और समन्वयवादी होते हुए भी मर्यादा विरोधी तथा लोक-विद्वेषकारी असत् प्रवृत्तियों के आगे झुकना स्वीकार नहीं किया। शक्ति, शील सौंदर्य के समन्वित प्रतीक राम में मर्यादा की स्थापना और उसके व्यावहारिक रूप पर दृढ़ता से टिकने की भावना अभिव्यंजित की गई है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के मधुर आदर्श तथा उत्सर्ग की भावना 'रामचरितमानस' में सर्वत्र बिखरी पड़ी है। तुलसी की काव्य चेतना में जीवन मूल्यों एवं मानव मूल्यों

का समन्वय है और यह मूल्य निरुपण भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों एवं नैतिकता के आदर्शों से अनुप्राणित है। कर्त्तव्य परायणता, शिष्टाचार, सदाचरण, कर्मण्यता, निष्कपटता, कृतज्ञता, सच्चाई, न्यायप्रियता, उत्सर्ग की भावना समदृष्टि, क्षमा आदि नैतिक मूल्यों का, इसलिए भक्ति काव्य में अग्रस्थान प्राप्त किए हुए दिखाया गया है, ताकि समाज, राजनीति एवं लोक–जीवन उन्नत बने।'

'रामचरितमानस' में जीवन मूल्यों का क्षेत्र सीमित नहीं है। उनमें वैश्विक दृष्टि है। मानव मात्र के कल्याण की कामना है। जीवन मूल्य स्थान, काल के बंधनों से मुक्त स्वस्थ समाज एवं कल्याणकारी राजनीति की स्थापना में सहायक एवं मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

'रामचरितमानस' में धार्मिक–दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन मूल्यों का निरुपण सुंदर ढंग से हुआ है। धर्म का उद्देश्य है मनुष्य को शुभत्व एवं शिवत्व की राह दिखा कर आत्मोन्नति की ओर अग्रसर कराना। इसके लिए तप और त्याग आवश्यक है। तप की महत्ता बताने वाली अनेक उक्तियाँ 'रामचरितमानस' में मिलती हैं जैसे.....

तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा।
तप के अगम न कछु संसारा।

तुलसीदास जी ने तप का महत्त्व निरुपित करने के लिए ही वाल्मीकि, अत्रि, भारद्वाज, नारद आदि को तपस्यालीन चित्रित किया है। त्याग का मूर्तिमंत उदाहरण यह है – बंधुत्रय – राम, लक्ष्मण एवं भरत। चक्रवर्ती होने वाले राम वनवासी हो जाते हैं। लक्ष्मण अपने दाम्पत्य सुख की बलि देकर भ्रातृसेवा का त्यागदीप्त जीवन मार्ग अपनाता है और भरत महल में प्राप्त राज्य में लक्ष्मी को तृणवत् मानकर भाई को ढूँढने निकल पड़ता है। तुलसीदास ने भरत के इस त्यागपूर्ण व्यक्तित्त्व को प्रशंसित करते हुए कहा है –

चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि, भरत सरसि को आजु॥

सामान्य धर्म के दस अंग माने गये हैं। 'रामचरित मानस' में तुलसीदास जी ने धर्म के इन सभी अंगों को भली–भाँति प्रतिपादित किया है। परधन हड़प लेने की वृत्ति चौर्य कार्य है। तुलसीदास जी कहते हैं –

धन पराय विष ते विष भारी।

संयम के लिए इन्द्रिय–निग्रह आवश्यक है। पंचेन्द्रियों को मनमाना न करने देना ही संयम है। इसलिए संत पुरुष काम–क्रोधादि का परित्याग करते हैं –

काम-क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।

सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु भजहिं जेहि संत (रामचरित मानस - सुंदरकाण्ड 5/39)

सत्य को धर्म का पर्याय मानकर तुलसीदास कहते हैं- 'धरमु न दूसर सत्य समाना।' इसी प्रकार परहित और अहिंसा की भावना का निरुपण करते हुए वे कहते हैं -

परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीडा सम नहिं अधमाई॥

विश्व का व्यवहार धर्मपालन पर अवलम्बित है। तुलसीदास के मतानुसार धर्म का पालन करने से ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होती है और सुख-संतोष की अनुभूति होती है -

धरम तडाग ग्यान विज्ञाना। ये पंकज विसके विधि नाना॥
सुख संतोष विराग विवेका। विगत सोक ये कोक अनेका॥
ऐसी धार्मिकता कष्टसाध्य है। जिसमें
नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी, कोउ एक होइ धर्मब्रतधारी।

गोस्वामी तुलसीदास ने धर्मरथ के रूपक के माध्यम से धर्म के विभिन्न अंगों का विस्तार से प्रतिपादन किया है। 'ज्ञानदीपक' के प्रसंग में भी उन्होंने धर्म के विविध अंगों का परिचय दिया है। जीवन मनुष्य की कड़ी कसौटी लेता है। रामचरितमानस में वर्णधर्म, आश्रमधर्म, पुत्रधर्म, स्त्रीधर्म, युगधर्म का भी निरुपण किया है। जैसे :

नित जुग धर्म होहिं सब केरे, हृदय राम माया के प्रेरें॥

तत्पश्चात् उन्होंने युग विशेष में मनुष्य के हृदय में कौन-सी भावनाएँ धर्म प्रेरक हो सकती हैं, इसका वर्णन किया है। 'रामचरितमानस' समानाचरण मूल्यों की दृष्टि से भी एक समन्वय ग्रंथ है। समाज में संत का कार्य संसारियों का मार्गदर्शन बनता है, अत: समाज को शिक्षा देने हेतु तुलसी ने सन्त के लक्षण एवं आचरणों को विस्तार से उल्लेख किया है। जैसे -

उमा संत कइ इहइ बडाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
संत हृदय जस निर्मल बारी,
बाँधे घाट मनोहर चारी।
संत उदय संतत सुखकारी,
संत विटप सरिता गिरि धरनी,
परहित हेतु सबन्ह कै करनी।

संत हृदय नवनीत समाना,
कहा कबिन्ह करि कहइ न जाना।
निज परिताप दवइ नवनीता,
परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता।

तुलसी का संत, शील का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत करता है। ऐसे संतत्त्व के लिए संन्यास ग्रहण करना आवश्यक नहीं। तुलसीदास ने भरत, विभीषण, हनुमान आदि में इसी संतत्त्व के महान् गुणों का निरुपण किया है। संत समाज का उन्नायक होता है और असंत अर्थात् खल प्रगतिपथ में रोड़ा। असंत के अवगुणों का भी उन्होंने वर्णन किया है। रावण के बारे में तुलसीदास जी ने कहा है –

काम रूप जानहिं सब माया।
सपनेहु जिन्ह के धरम न दाया।

तुलसीदास जी गुरु-शिष्य सम्बन्ध को पावनतम संबंध मानते हैं। गुरु के गरिमामय व्यक्तित्त्व का उन्होंने प्रभावशाली शब्दों में वर्णन किया है।

हरइ शिष्य धन सोक न हरई,
सो गुरु घोर नरक महुँ परई॥

कहकर धोखेबाज गुरुओं को उन्होंने आड़े हाथों लिया है। गुरु की तरह मैत्री में कादारी का मूल्य भी सुंदर ढंग से निरुपित किया है।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी
तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।

'रामचरितमानस' में राजनीतिपरक मूल्यों का भी तुलसीदास जी ने विशद् निरुपण किया है। 'रामचरितमानस' में तुलसी ने तत्कालीन मुगल प्रशासन तंत्र का चित्रण कलियुग के वर्णन के रूप में उत्तरकांड में किया है। उन्होंने नृपतंत्र के रूप में दशरथ के शासन तंत्र की मर्यादाएँ बताई हैं तो दूसरी ओर जनक जैसे दार्शनिक तथा त्यागी सम्राट के राज्य संचालन को भी वर्णित किया है। किन्तु तुलसीदास को राम के शासन तंत्र के समर्थक और रावण के शासन तंत्र के विरोधी हैं। तुलसी ने राजा को प्रजा का प्रतिनिधि माना है। राजा की सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने उसकी निरंकुशता को सह्य नहीं माना है। उन्होंने उसी शासक को सच्चा शासक माना है, जो पद को प्रजा की सेवा का निमित्त मानता है।

जनता की अपेक्षाओं के परिपुष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि – 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।' राजा को तुलसी ने सूरज से उपमित किया है –

बरषत, हरषत लोग सब, करषत लखै न कोई।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होई॥

'राजा' को मुख समान होकर सब विधि प्रजा का पोषण करना चाहिए - इस बात पर जोर देते हुए कहा है कि -

मुखिया मुख सा चाहिए, खान पान को एक
पालहिं-पोषहिं सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥

तुलसीदास ने इसके लिए 'राम-राज्य' अथवा कल्याण-राज्य का आदर्श प्रस्तुत किया है। यह कल्याणकारी राज्य धर्म का राज्य होता है, न्याय का राज्य होता है, कर्त्तव्य-पालन का राज्य होता है। वह सत्ता का नहीं, सेवा का राज्य होता है। इस कल्याणकारी राज्य की झोली में है - क्षमा, समानता, सत्य, त्याग, बैर का अभाव, बलिदान एवं प्रजा का सर्वांगीण उत्कर्ष। इस कल्याणकारी राज्य की कल्पना की परिधि में व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य और विश्व का कल्याण समाविष्ट है। इसके केन्द्र में है धर्म जिसे हम वर्तमान के संदर्भ में 'कर्त्तव्य पालन' के स्वरूप में भी ले सकते हैं। जहाँ धर्म होगा, वहाँ सत्य होगा, शिवत्व होगा, सौंदर्य होगा, सुख होगा, शान्ति होगी, कल्याण होगा।

तुलसीदास ने देखा कि अपने युग में जनता पारस्परिक कलह, ईर्ष्या, द्वेष और अधर्म में फँसी हुई है। पति-पत्नी, भाई-भाई, राजा-प्रजा, परिवार-कुटुम्ब में छोटी-मोटी बातों पर कलह-विवाद ओर संघर्ष हो रहे हैं।

जहाँ समाज मानस-रोगों से विमुक्त होकर विमलता, शुभ्रता, नीति और धर्म का आचरण करे, उसी का नाम कल्याणकारी राज्य। यह कल्याणकारी राज्य अशत्रुत्व और समता का राज्य है। इसके अभाव में राज्य कल्याण - राज्य न रहकर अनेक दूषणों से दूषित हो जाता है, जिसकी झाँकी तुलसी ने हमें 'कलि-काल' वर्णन में कराई है।

'रामचरित-मानस' उन आदर्शों की उर्वर भूमि है, जिसको अपनाने से किसी युग की प्रजा अपने कल्याण की साधना कर सकती है। वैसे तो रामराज्य का वर्णन रामचरितमानसेतर अन्य ग्रंथों में भी मिलता है : जैसे भागवत, महापुराण, पद्मपुराण इत्यादि में। किन्तु 'रामचरितमानस' के 'उत्तर-कांड' में तुलसी ने राम-राज्य अथवा कल्याण-राज्य की परिकल्पना की है - पारस्परिक स्नेह, स्व-धर्म पालन, धर्माचरण और आत्मिक उत्कर्ष का संदेश, प्रजा एवं प्रजेश की आत्मीयता और आदर भाव, प्रीति एवं नीतिपूर्ण दाम्पत्य जीवन, उदारता एवं परोपकार, प्रजा कल्याण एवं सुराज्य का संतोषप्रद वातावरण- ये हैं उस धर्मयुक्त

कल्याणमय राज्य की विशेषताएँ। रामराज्य के इस चित्रण के साथ तुलसी के आदर्श अथवा कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना सन्निहित है।

रामराज्य का विस्तृत वर्णन हमें 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकांड' में मिलता है। तुलसीदास कहते हैं–

रामराज्य बैठे त्रैलोका, हरषित भये गए सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई।।
बरनाश्रम निज-निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहि भय सोक न रोग।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहीं काहुहिं व्यापा।
सब नर करहि परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति-नीति।
चारिऊ चरन धर्म जग माही। पूरि रहा सपनेहुँ दुःख नाही।।

अर्थात् रघुनाथ जी को जिस समय राज्य-तिलक दिया, उस समय त्रिलोक आनंदित हुए और सारे शोक मिट गये। कोई किसी से बैर नहीं रखता और राम के प्रभाव से सब की कुटिलता जाती रही। चारों वर्ण, चारों आश्रम – सब अपने वैदिक धर्म के अनुसार चलते हैं। सुख प्राप्त करते हैं, किसी को भय, शोक और रोग नहीं हैं दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्त होकर सब लोग परस्पर स्नेह करने लगे और अपने कुल धर्मानुसार जीवन जीने लगे।

आगे की पंक्तियों में तुलसी ने गाया है कि तप, ज्ञान, यज्ञ, दान इन चारों चरण से धर्म जगत् में परिपूर्ण हो गया था कहीं पाप का नाम नहीं। नर-नारी राम के भक्त हो गये थे। राम-राज्य में अल्प मृत्यु अथवा किसी तरह की शारीरिक पीड़ा किसी को न थी। कोई दुःखी न था, दरिद्र न था, दीन न था, मूर्ख न था। सब लोग धर्म निरत, दयालु और गुणवान थे। रघुनाथ जी के राज्य की सुख-संपत्ति का वर्णन खुद शारदा भी नहीं कर सकती। मनुष्य का एक-नारी व्रत था। दंड के बजाय प्रेम से सबको जीत लिया गया था।

मनुष्यों के नीतिपूर्ण जीवन से प्रसन्न प्रकृति ने भी पूर्ण उदारता से फल, फूल इत्यादि देने में कोई कसर नहीं रखी थी। तुलसी कहते हैं –

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।
खग-मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढाई।
कूजहिं खग-मृग नाना वृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा।
सीतल सुरभ पवन वह मन्दा। गुंजत अलि लै चलि मकरन्दा।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।

पर्वतों में से अनेक तरह की मणियों की खानें जगत-प्राण राम को देखकर प्रकट हो गईं। सब नदियों में सुन्दर जल प्रवाहित होने लगा, जो शीतल, निर्मल और मजेदार था। सागर अपनी सीमा का अनुल्लंघन करते हुए किनारों पर रत्न फेंकते थे। सरोवरों में पंकज खिले थे। पूरा वायुमंडल मनोहर था।

इस प्रकार राम के राज्य में शशि की अमृतमयी किरणों से अवनि परिपूर्ण थी और बादल माँगने पर जलधारा बरसाते थे। धर्मयुक्त कल्याणकारी राज्य का मूल है : प्रजा-कल्याण एवं शासकों की नीतिमता। राम के राजतंत्र में हमें प्रजा-सत्ता के कल्याणमय स्वरूप का दर्शन होता है। राम हमारे सामने कल्याणकारी शासक का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। आदर्श शासक अथवा सरकार वही है, जो प्रजा को सुख प्रदान करे। इसलिए तुलसीदास जी इस बात पर जोर देते हैं कि .....

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

जिसमें प्रजा सुखी है, वही कल्याणकारी राज्य है, वही सुराज्य है - 'सुखी प्रजा जनु पाई सुराजु' - पंक्ति में वही भाव ध्वनित है - कल्याणकारी राज्य के राजा का प्रधान धर्म है : वचन-पालन, सत्यनिष्ठा एवं स्वावलंबन। राम का राजा के रूप में वर्णन करते हुए तुलसीदास ने कहा हैं-

साधु, सुजान, सुशील, नृपाला ईश अंश भव राम कृपाला।
रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्रान जाहि पर वचन न जाई।

कल्याणकारी राज्य में व्यक्तिगत स्वातंर्त्र्य का बहुत बड़ा महत्त्व है। राम-राज्य एक तरह से प्रजा-तंत्रात्मक राज्य था। उसकी प्रजा को संपूर्ण स्वातंर्त्र्य था, अत: लोग निर्भीक होकर रानी कैकेयी के कलुषित कार्यों की आलोचना कर सकते थे। यहाँ तक कि राम के व्यक्तिगत जीवन की भी। प्रजा की भावना का आदर करते हुए राम ने सीता का परित्याग किया, इससे बढ़कर शायद ही कोई सबूत किसी राजा की प्रजा-प्रियता एवं महानता का मिल सके। कल्याणकारी राज्य में सत्ता प्रजा की धरोहर मानी जाती है। राम के राज्य में प्रजा अथवा पंचों के परामर्श को महत्त्व मिलता था। राम-राज्य सत्य, दया, नीति और धर्म का राज्य था। किसी भी राज्य के उत्कर्ष के लिए ये चार वस्तुएँ आधार-शिलाएँ हैं। जहाँ मानव मात्र को समान समझा जाये, वही कल्याकारी राज्य। 'रामचरितमानस' में इसका भी चित्र मिलता है। वनगमन के सिलसिले में राम चित्रकूट में डेरा लगाते हैं। उनके आगमन की खबर सुनकर

गुह-किरात-शबर इत्यादि वनवासी लोग उनके दर्शनार्थ दौड़ आते हैं। उस समय राम का स्नेहासिक्त व्यवहार दर्शनीय है–

राम स्नेह मगन सब जाने। कवि प्रिय वचन सकल सनमाने।
वचन किरातन के सुनत, जिमि पितु बालक बैन।
राम सकल बनचर परितोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे।

राज्य बनता है - व्यक्तियों से, परिवारों से और समाजों से। रामराज्य अथवा कल्याणकारी राज्य तभी संभव होता है, जब पारिवारिक जीवन शुद्ध और मर्यादायुक्त हो। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू इत्यादि का पारस्परिक संबंध एवं व्यवहार यदि मर्यादापूर्ण एवं विवेकयुक्त होगा तो सामाजिक जीवन स्वस्थ रहेगा। भाई-भाई के बीच स्नेह, विश्वास और प्रेम होना चाहिए। राम भरत से कहते हैं -

गुरु, पितु-मातु स्वामि सिख पालें,
चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें
अस विचारि सब सोच बिहाई,
पालहु अवध अवधि भरि जाई।

तुलसी ने स्वराज्य का स्वरूप, सुराज्य का आदर्श, राजा का आचरण, प्रजा का व्यवहार, मंत्री का कर्त्तव्य एवं दूत का धर्म कैसा होना चाहिए आदि के बारे में अपने विचार अनेक स्थलों पर प्रकट किये हैं, जो प्रजा- कल्याण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। राजा-राजा के बीच, सेवक - स्वामी के बीच कैसा व्यवहार अपेक्षित है, उसकी चर्चा तुलसी ने 'रामचरित मानस' में स्पष्टतः की है। इस तरह हम देखते हैं कि तुलसीकृत राम-राज्य के वर्णन में हमें धर्मयुक्त कल्याणलक्षी आदर्श राज्य का दर्शन होता है। राम का राज्य एक तंत्रात्मक था, किन्तु वही सही अर्थ में लोक-तंत्रात्मक था। क्योंकि सत्ता नहीं सेवा, सेवा नहीं जनकल्याण ही राम का आदर्श था, अतः धर्म अथवा कर्त्तव्य परायणता ही उनका जीवन-मंत्र था।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'रामायण' या 'रामचरितमानस' को हम केवल धार्मिक-आध्यात्मिक ग्रंथों के रूप में मूल्यांकित करें या कि यह वर्तमान युग में प्रासंगिक है।

'तुलसीदासः आज के संदर्भ में' - पुस्तक में युगेश्वर जी ने उचित ही कहा है कि राष्ट्र की भावात्मक एकता के लिए जिस उदात्त चरित्र की आवश्यकता है, वह रामकथा में है। मानस एक ऐसा वाग्द्वार है जहाँ समस्त

भारतीय साधना और ज्ञान परम्परा प्रत्यक्ष दीख पड़ती है। दूसरी ओर देशकाल से परेशान, दु:खी और टूटे मनों का सहारा तथा संदेश देने की अद्‌भुत क्षमता है। आज भी करोड़ों मनों का यह सहारा है। 'रामचरितमानस' के संदेश को केवल भारत तक सीमित स्वीकृत करना इस महान् ग्रंथ के साथ अन्याय होगा। 'रामचरितमानस' युगवाणी है। विश्व का एक ऐसा विशिष्ट महाकाव्य जो आधुनिक काल में भी ऊर्ध्वगामी जीवन दृष्टि एवं व्यवहारधर्म तथा विश्वधर्म का पैगाम देता है। 'रामचरितमानस' अनुभवजन्य ज्ञान का 'अमरकोश' है।

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान 'क्या है' यह तो बता सकता है, यह किन्तु 'क्या होना चाहिए' और क्यों होना चाहिए? इस प्रकार के प्रश्नों को नहीं छूता। मानव जीवन के मूल्यों का विचार न कभी विज्ञान ने किया है न करेगा। विज्ञान केवल ज्ञेय वस्तु तक ही सीमित है।

वैज्ञानिक प्रगति ने आज के मानव जीवन को 'सुखी' बनाया है, किन्तु 'प्रसन्न' बनाया है ? खाने-पीने, रहने-सोने, उठने-बैठने जैसी साधारण-सी बातों को लेकर समस्याएँ पैदा हो रही हैं। भौतिकवाद ने मनुष्य को आत्मकेन्द्री बनाया है। त्याग के स्थान पर 'परिग्रह' का महत्त्व अत्र-तत्र-सर्वत्र दृष्टिगत होता है। इसका मूल कारण है अध्यात्म की विस्मृति अर्थात् मानव जीवन के शाश्वत मूल्यों की उपेक्षा। कवि भर्तृहरि के शब्दों में कहें तो मनुष्य भोगों को नहीं भोग रहा, भोग मनुष्यों का उपभोग कर रहे हैं। इस विकट परिस्थितियों का उपाय है निर्मल, तपोद्दीप्त एवं त्यागपूर्ण जीवन दृष्टि। आज 'कामराज्य', 'दामराज्य' और 'जामराज्य' (मद्यपान) ने मनुष्य जीवन को बुरी तरह घेर लिया है। विश्व बंधुत्व की भावना की विस्मृति विश्व को भयग्रस्त बना रही है।

'तुलसी के हिय हेरि' में तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ स्व. विष्णुकान्त शास्त्री जी ने 'आधुनिकता की चुनौती और तुलसीदास' शीर्षक अध्याय में कहा है कि तुलसीदास की विचारधारा का विपुलांश आज भी वरणीय है। श्रीराम सगुण या निर्गुण ब्रह्म, अवतार, विश्व रूप, चराचर व्यक्त जगत् या चाम मूल्यों की समष्टि और स्त्रोत-(उन का जो भी रूप आप को ग्राह्य हो) के प्रति समर्पित, सेवा प्रधान, परहित निरत, आधि-व्याधि-उपाधि रहित जीवन, मन, वाणी और कर्म की एकता, उदार, परमत सहिष्णु, सत्यनिष्ठ, समन्वयी दृष्टि, अन्याय के प्रतिरोध के लिए वज्र - कठोर, प्रेम-करुणा के लिए कुसुम कोमल चित्त, गिरे हुए को उठाने और आगे बढने की प्रेरणा और आश्वासन, भोग की तुलना में तप को प्रधानता देने वाला विवेकपूर्ण संयत आचरण, दारिद्रय मुक्त, सुखी, सुशिक्षित,

समृद्ध समतायुक्त समाज, साधुमत और लोकमत का समादर करने वाला प्रजा हितैषी शासन-संक्षेप में यही आदर्श प्रस्तुत किया है, तुलसी की 'मंगल करनि, कलिमल हरनि'-वाणी ने। क्या आधुनिकता इस को खारिज कर सकती है ?

विष्णुकान्त शास्त्री जी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने रखते हुए पूछते है : और फिर आधुनिकता को यह आदर्श चुनौती नहीं दे सकता ? क्या यह उस से नहीं पूछ सकता कि आधुनिक प्राचुर्ययुक्त समाज बाहर से जितना भरा-भरा लगता है, भीतर से उतना ही खोखला नहीं है ? भौतिक समृद्धि के साथ-ही-साथ मनुष्य की बेचैनी, छटपटाहट, हताशा, क्यों बढ़ती जा रही है ? आज की उद्धृत बौद्धिकता परंपरागत मूल्यों के खंडन में सफल होने का दावा करती है, वैसा दावा हृदय को अवलम्ब दे पाने वाले किसी विश्वास के निर्माण के लिए क्यों नहीं कर पाती ? लोकतंत्र का मुखौटा लगाये पूँजीवादी व्यवस्था हो या समाजवादी रामनामी ओढे वर्गवादी, दलीय तानाशाही - क्यों ऐसा है कि दोनों खेमों में झूठ, फरेब, दमन, प्रलोभन पर आधारित हृदयहीन शासन तंत्र पनप रहा है और विचार की वाणी का दम घोंटा जा रहा है ? विज्ञान की सहायता से इंद्रियों को सुख देने वाले एवं अहं को तृप्त करने वाले पदार्थों द्वारा अपने को संतुष्ट आन की स्नायुविक तनावग्रस्त मानव दूसरों से क्यों करता और अकेला पड़ता चला जा रहा है ? आज विश्व असलामती, संत्रास, हिंसा एवं आततायी आक्रमणों के दौर से गुजर रहा है, तब रामायण और रामकथा की प्रेरणा इस युग के लिए प्रासंगिक है। तुलसीदास आज भी हम लोगों के लिए अपरिहार्य हैं। आज भी उनके आदर्श एक बड़ी सीमा तक हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। क्योंकि तुलसी विश्वकवि से किसी भी तरह कम नहीं। आज भी तुलसी प्रासंगिक हैं। पारुकान्त देसाई की तुलसी विषयक कविता की निम्न पंक्तियाँ मर्मस्पर्शी हैं -

जीवन के प्रत्येक अंग में
घुल गया है जहर
तन में, मन में, व्रण में, प्रण में
कथन में, कवन में !
इस जहर का आकंठ पान करना होगा तुम्हें
साहित्यिक नीलकंठ !
जानता हूँ तुम मर्यादावादी थे
इस के बावजूद
बेलगाम, बेनकाब

होकर लिखना पड़ रहा है,
क्योंकि –
तेरे द्वारा खींची गयी आदर्शों की
सारी तस्वीरें
आज बदसूरत हैं,
इसीलिए, इसीलिए कहता हूँ कि
तुलसी !
तेरी आज भी जरूरत है।
मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक।
पाले पोसे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।
समरथ को नहिं दोश गोसांई
शठ सुधरहि सतसंगति पाई,पारस परसि कुधातु सुहाई।
परहित सरसि धरम नहि भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।
का बर्षा जब कृषी सुखानी
सिया राम मैं सब जग जानी,
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।
धीरज धरम मित्र अरु नारी,
आपद काल परखिये चारी।
जाके प्रिय न राम वैदेही,
तजिये ताम कोटि बैरी सम जदपि परम सनेही ।
शूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रन पाई रिपु कायर कथहिं प्रतापु ।।
पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे अचरहिं ते नर न घनेरे।
भय बिनु होहिं न प्रीति ।
कादर मन कहुँ एक अधारा ।
दैव-दैव आलसी पुकारा ।।
सकल पदारथ एहि जग मांही, कर्महीन नर पावत नाही।
कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा।
जथा उलूकंहि तम पर नेहा।
कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सबकंह हित होई ।
तुलसी का धर्म-रथ

सुनहु सखा, कह कृपानिधाना, जेहिं जय होई, सो स्यन्दन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम पर-हित घोर, छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना, बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा, बर बिग्यान कठिन को दंडा।
अमल अचल मन त्रोन सामना, सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र-गुरुपूजा, एहि सम बिजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें, जीतन कहँ न कतहूँ रिपु ताकें।
महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर ।
जाकें अस रथ होई दृढ़, सुनहु सखा मति-धीर ।।
(लंकाकांड)
अति संघरषन जौं कर कोई ।
अनल प्रगट चन्दन तें होई ।।
परद्रोही कि होंहि निशंका ।
कामी पुनि कि रहैं अकलंका ।।
कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाक्षर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक ।।
मोह सकल ब्याधिन को मूला ।
तिन तें पुनि उपजें बहु सूला ।।
बिनु संतोस न काम नसाहीं।
काम अक्षत सुख सपनेहुं नाहीं।।
रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाइ पर बचन न जाई।।
जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।
पण्डित सोई जो गाल बजावा।
मति अति नीच, ऊँचि रुचि आछी ।
चहिअ अमिय जग, जुरइ न छाछी । ।
सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि।।

अर्थ–स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता ,वह हृदय में खूब पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है।

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकति हानि॥

अर्थ–जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग कर देते हैं वे क्षुद्र और पापमय होते हैं। दरअसल ,उनका तो दर्शन भी उचित नहीं होता।

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय

भगवान राम के पावन चरित्र वर्णन से जहां तुलसी ने आत्म-कल्याण किया वहां उन्होंने भारतीय समाज, संस्कृति एवं धर्म का वह उपकार किया है, जो आज तक भी हिन्दी का साहित्यकार नहीं कर सका। नि:संदेह ठीक ही है।

भारी सब सागर में उतारतै कौन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो॥

विनय-पत्रिका-यह तुलसीदास रचित एक ग्रंथ है। यह ब्रज भाषा में रचित है। विनय पत्रिका में विनय के पद है। विनय पत्रिका का एक नाम राम विनयावली भी है विनय पत्रिका की भाषा ब्रज है तथा इसमें 21 रागों का प्रयोग हुआ है विनय पत्रिका का प्रमुख रस शांतरस है इस रस का स्थाई भाव निर्वेद होता है। विनय पत्रिका आध्यात्मिक जीवन को परिलक्षित करती है। इस में सम्मिलित पदों की संख्या 280 है।

काव्यगत विशेषताएँ

भाव-तुलसी का काव्य लोक-कल्याण की चार पवित्र भावनाओं से प्रेरित है। सर्वप्रथम-भक्ति भावना, द्वितीय-समाजिक आदर्शो की स्थापना, तृतीय-धार्मिक समन्वय, चतुर्थ-दासता से मुक्ति का संदेश।

भक्ति-भावना

तुलसी की भक्ति अनन्य भाव की भक्ति थी। ये स्मार्त वैष्णव और विशिष्टाद्वैतवादी थे। राम उनके जीवन सर्वस्व है। अपने ईष्टदेव भगवान राम के पावन चरित्र, उन्ही महानता और विशालता तथा अपनी दीनता और दास्य भाव का विशद् एवं विस्तृत, कल्याणकारी एवं मनोहारी वर्णन किया है। तुलसी की अनन्यता इससे अधिक क्या हो सकती है। कि जिस देवता से यदि कुछ माँगा भी तो यही माँगा कि राम मेरे मन में निवास करे–

'माँगत तुलसीदास कर जोरे, बसहिं राम सिय मानस मोरे' तुलसीदास की दीनता और अनन्यता अपने स्थान पर अद्वितीय है, कितना भी कठोर स्वामी क्यों न हो सेवक की इन बातों से जरूर पिघल जाएगा।

रावरे को दूसरो न द्वार राम दया धाम।
रावरी ही गति बले, विभव विहीन की॥

सामाजिक आदर्शों की स्थापना

तत्कालीन समाज की स्थिति अस्त-व्यस्त एवं अव्यवस्थित हो चुकी थी। तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अनुकरणीय आदर्श चरित्र समाज के आगे रखा। समाज को स्वस्थ एवं सुनियंत्रित बनाने के लिए राम के आदर्श चरित्र के माध्यम से समाज का नीति-निर्देश एवं पथ-प्रदर्शन किया। लोक मंगल की भावना से ओत:प्रोत तुलसी का काव्य मानव-जीवन के अनन्त कर्त्तव्यों से भरा पड़ा है जिससे समाज आज भी नियन्त्रित और अनुप्रणित हो रहा है।

धार्मिक समन्वय

तुलसी महान समन्वयवादी थे। विश्रृंखलित समाज में उस समय धर्म का स्वरूप विकृत होता जा रहा था। अनेकों वाद, सम्प्रदाय और मत मतान्तर पारस्परिक विद्वेष और घृणा फैला रहे थे। इस विद्वेष को दूर करने के लिए तुलसी ने अपने काव्य में बड़ा बुद्धिमतापूर्वक सभी को एक-दूसरे से मिलाने का और पास लाने का सफल प्रयत्न किया।

दासता से मुक्ति का संदेश

विदेशी विजेताओं ने भारत में जमकर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। जन नायक के अभाव में जनता राह भूले राहगीर की भाँति भटक रही थी, मुक्ति का मार्ग दूर-दूर तक दिखाई न देता था। तुलसी ने इस अभाव की पूर्ति की। जनता को संगठन और सुसंगठित शक्ति का महान संदेश दिया।

भाषा

तुलसी की भाषा अवधी एवं ब्रज है। राम चरित मानस अवधी भाषा में तथा विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, गीतावली आदि ब्रज भाषा में लिखित काव्य है। इनकी दोनों भाषाएं भावों को प्रकट करने में पूर्णतया समर्थ

है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं अरबी और फारसी के सरल शब्द भी पाए जाते है। शब्द चयन व्यवस्थित है। भाषा में अपूर्व प्रवाह है। भाषा ओज, प्रमाद और माधुर्य गुणों से युक्त है।

शैली

तुलसी ने अपने समय तक हिन्दी काव्य जगत् में प्रचलित समस्त शैलियों में विद्वतापूर्वक रचना करके सभी शैलियों का प्रतिनिधित्व किया है। भिन्न-भिन्न शैलियाँ तथा रचनाएँ इस प्रकार है:-

1. चन्द की छप्पय शैली-कवितावली में।
2. कबीर की दोहा शैली-कवितावली में।
3. सूर की पद शैली-गीतावली तथा विनय पत्रिका में।
4. जायसी की चौपाई शैली-कवितावली में।
5. रहीम की बरवैशैली-बरवै रामायण में।
6. मोहर शैली-ग्राम्य एवं लोकगीतों में।

रस, छन्द व अलंकार

महाकवि तुलसी के काव्य में सभी रसों का सफल एवं सुन्दर परिपाक हुआ है। परन्तु प्राधान्य करुण और शान्त रस का है। तुलसी का शृंगार अत्यन्त मर्यादित एवं शिष्ट है। संयोग शृंगार की एक झलक देखिए-

'राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाही,
याते सवैं सुध भूलि गई कर टेक रही पल टरति नाहीं॥'

छन्द योजना तुलसी की अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इन्होने युग की प्रचलित सभी शैलियों एवं छन्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया था। परन्तु दोहा, चौपाई कविता सवैया तथा पद तुलसी को अधिक प्रिय थे।

तुलसी को अंलकारों की चिंता नहीं थी। इन्हें सच्चे भाव की आवश्यकता थी। इस पर भी जहाँ आप की दृष्टि जाएगी वहाँ आपको कोई न कोई अलंकार अवश्य मिल जाएगा। तुलसी के काव्य में अलंकार भावों के पीछे-पीछे सहायक बनकर चले है। फिर भी उपमा, रूपक, सांगरूपक, उत्प्रेक्षा आदि का स्वाभाविक एवं सफल प्रयोग दर्शनीय है।

गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक योगदान

हिन्दी साहित्य के महान कवि थे इनका जन्म सोरों शुकर क्षेत्र वर्तमान में कासगंज एटा उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान उनका जन्म राजापुर जिला बांदा वर्तमान में चित्रकूट में हुआ मानते हैं। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता वाल्मिकि का अवतार भी माना जाता है। श्री रामचरितमानस की कथा रामायण से ली गई है। रामचरितमानस लोकग्रन्थ है और इसे उतर-भारत में बड़े भक्ति-भाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46 वां स्थान दिया गया है तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था जन्म के दूसरे ही दिन माँ का निधन हो गया था। पिता ने बालक को चुनियाँ नाम की दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गये। बचपन में इनका नाम रामबोला था जब बालक साढ़े पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही वह गली-गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया।

भगवान शंकर जी की प्रेरणा से रामशैल पर रहने वाले श्री अनंतानन्द जी के परम शिष्य श्री नरहरि बाबा ने इस बालक को ढूँढ़कर उसका विधिवत् नाम तुलसी राम रखा तदुपरान्त वे उसे अयोध्या उत्तर-प्रदेश ले गये वहाँ उनका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कराया एवं वैष्णो के पाँच संस्कार करके बालक को राम मन्त्र की दीक्षा दी। 25 वर्ष की आयु में राजापुर से थोड़ी ही दूर यमुनापार स्थित एक गाँव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली से उनका विवाह हुआ एक बार अचानक ही वह उनसे मिलने चले गए और उससे उसी समय चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खीझकर रत्नावली ने स्व-रचित एक दोहे के माध्यम से जो शिक्षा उन्हें दी उसने ही तुलसीराम को 'तुलसीदास' बना दिया रत्नावली ने जो दोहा कहा वह इस प्रकार है–

अस्थि चर्म मय देय यह, ता सो ऐसि प्रीति।
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव भीत?

रामायण– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अमृतय रूप है तो रामचरितमानस रामभक्ति की श्रद्धा की सरयू, भक्ति की भगीरथी है। रामचरित मानस शाश्वत जीवन मूल्यों का आधारदीप हैं प्रत्येक संस्कृति के कुछ ऐसे शाश्वत नियम उप-नियम एवं परम्पराऐं होती हैं, जो इसकी आधारशिला है।व्यक्ति के निजी

जीवन, समाज एवं राष्ट्र को निर्मल सम्मुनत एवं आदर्शलक्षी बनाने के लिए ऐसे नियम विवेकपूर्ण जीवन रीति-निति के मार्गदर्शक होते हैं। ऐसे मानदण्ड निर्धारित करने में धर्मग्रन्थों, शास्त्रग्रन्थों एवं जीवनमूल्यनिष्ठ साहित्यिक रचनाएं सहायक होती हैं। ये मूल्य समाज एवं राष्ट्र की आकाक्षाएं होते हैं।भारतीय सस्कृति में चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को जीवन के मूल्यों के रूप में उल्लेखित करते हुए मोक्ष को नि:श्रेयस की प्राप्ति का सर्वोत्तम लक्ष्य माना गया है।

तुलसीकृत रामचरितमानस उनकी विराट प्रतिभा का साधनाजन्य वह पुरस्कार है, जो व्यक्ति के इहिलोक एवं परलोक सुधरने की अद्वितीय क्षमता रखता है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अग्निपुराण के बचन का उल्लेख करते हुए कहा हैं 'नरत्वं दुर्लभ लोक, लोके विद्या सुदुर्लभा। महाकवि तुलसीदास जी को उक्त चारों विभूतियाँ परिप्राप्त थीं और इनका सदुपयोग उन्होने सर्वजन हिताय ही किया।शिक्षा का मूल्य इस बात में है कि यह हमारे आवेगो में संयति और सन्तुलन स्थापित करे, हमारी अनुभूतियों के क्षेत्र को व्यापक बनाए तथा मनुष्यों को परस्पर सहयोग के लिए।

तुलसीदास का साहित्यिक दृष्टिकोण कलालक्षी नहीं जीवनलक्षी था। उन्होंने उस भक्ति को आदर्श स्वरूप माना जिसमें श्रेय एवं प्रेय का समन्वय हो तुलसी कभी किसी वाद के चौखटे में प्रतिबद्ध नहीं रहे क्योकि वे सत्याग्रहलक्षी साधक थे इसलिए वे मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति जीवन विषयक एक समविन्त दृष्टिकोण रामचरित मानस में प्रस्तुत कर सके। तुलसीदास जी ने हिन्दू धर्म में निरन्तर उत्पन्न हो रहे मत-मतान्तरों, सम्प्रादायों और सामाजिक वैषम्य को दूर करके एक आदर्श समाज की कल्पना रामचिरत मानस में की है। वे शुभ को ही जीवन का मूल्य मानते हैं इसलिए उनका साहित्य मानव-मूल्यों के जय जयकार के प्रति समर्पित है ऐसे सिद्धांत, जो मानव को मानव को बनाते है हम उन्हीं को जीवन मूल्य कहते है जीवन मूल्य ही मानवीय आवश्यकाताओ की तुष्टि के साथ लोकमंगल तथा आत्मोपलब्ध सिद्धि में सहायक होते हैं। पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के मधुर आदर्श तथा उत्सर्ग की भावना रामचरित मानस में सर्वत्र बिखरी हुई है।

तुलसी की काव्य चेतना में जीवन मूल्यों तथा मानव मूल्यों का समन्वय है और यह मूल्य निरुपण भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों एवं नैतिकता के आदर्शों से अनुप्राणित है।

तुलसीदास जी ने तप का महत्त्व निरूपित करने के लिए ही वाल्मीकि, अत्रि, भारद्वाज, नारद आदि को तपस्यालीन चित्रित किया है। त्याग–त्याग का मूर्तित उदाहरण यह है– बन्धुत्रय– राम, लक्षण एवं भरत। चक्रवर्ती होने वाले राम वनवासी हो जाते हैं। लक्ष्मण अपने दाम्पत्य सुख की बलि देकर भ्रातृसेवा उन्होंने नृपतंत्र के रूप में दशरथ के शासन तन्त्र की मर्यादाएं बताई है तो दूसरी और जनक जैसे –दार्शनिक तथा त्यागी सम्राट के राज्य संचालन को भी वर्णित किया है। तुलसीदास जी ने राजा को प्रजा की प्रतिनिधि माना है। राजा की सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उन्होने उसकी निरंकुशता को सही नहीं माना है। उन्होंने उसी शासक को सच्चा शासक माना है, जो पद को प्रजा की सेवा का निमित मानता है। जनता की उपेक्षाओं को परिपुष्ट करते हुए उन्होंने कहा–

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी सो नृप अवसि नरक अधिकारी'

राजा को तुलसीदास जी ने सूरज से उपमित किया है–

बरसत, हरषत लोग सब, करषत लखै न कोई।
तुलसी प्रजा सुभाग वे भूप भानु सो होई॥

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में तुलसीदास जी ने राम राज्य अथवा कल्याणकारी राज्य का वर्णन किया है– पारस्परिक स्नेह, स्व–धर्म पालन अपने कर्त्तव्यों का पालन, धर्माचरण सत्य, शिव, सौंदर्य, सुरन, कल्याणद्ध, आत्मिक उत्कर्ष , प्रजा एवं प्रत्येक के प्रति आत्मीयता एवं आनंद का भाव, प्राति एवं नीति पूर्ण जीवन उदारता एवं परोपकार दयालुता का उपकार करने की भावना, ये सब धर्मयुक्त कल्याणकारी राज्य अथवा राम राज्य की विशेषताएँ है। तुलसीदास जी द्वारा राम राज्य का यह चित्रण–आदर्श एवं कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना है।

2

तुलसी काव्य में भक्ति भावना

मनुष्य ने सदैव ही अलौकिक ईश्वर में अपनी श्रद्धा रखी है। प्रारंभ में वह प्रकृति को अपनी श्रद्धा का केन्द्र मानता था। जैसे-जैसे मानव की बुद्धि का विकास हुआ उसने अपनी समझ के अनुसार अपनी आस्था का केन्द्र परिवर्तित करता चला गया। कालान्तर में विभिन्न विद्वानों ने पौराणिक ग्रंथों में आस्था को भक्ति का नाम दे दिया। आदिकाल से हमारे देश में धर्म साधना के तीन प्रमुख पक्ष माने जाते रहे हैं– क्रिया पक्ष, बुद्धि पक्ष एवं हृदय पक्ष। इन्हीं को कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग के मूल में जानना चाहिए। देशकालानुसार धर्म विशेष में कोई भी एक पक्ष प्रमुख होता है और अन्य गौण हो जाते हैं। वैदिक साहित्य में तीनों का एक साथ विधान मिलता है। भारत में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति को अलग-अलग न मानकर इन्हें एक-दूसरे का पूरक समझा जाता है।

भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज् सेवायाम्' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के संयोग से हुई जिसका अर्थ है 'सेवा'। भक्ति शास्त्र के विभिन्न आचार्यों ने इस शब्द की अनेकों व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं 'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र' के अनुसार 'सा परानुशक्तिश्वरे' अर्थात् ईश्वर के प्रति परम अनुराग ही भक्ति है। 'नारद भक्ति सूत्र' में ईश्वर के प्रति परम प्रेम को ही भक्ति बताया गया है, जोकि अमृत स्वरूप है (सा त्वास्मिन परम प्रेमस्वरूपा अमृतस्वरूपा च) श्रीमद् भागवत के अनुसार सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की प्राकृतिक प्रवृत्ति निष्काम रूप से भगवान में जब लगती है तब उस प्रवृति को भक्ति कहते हैं।

रूप गोस्वामी ने 'हरि-भक्ति-रसामृत सिन्धु' में ज्ञान और कर्म के प्रभाव से भिन्न होकर किसी प्रकार के फल की इच्छा किए बिना निरन्तर कृष्ण का प्रेमपूर्वक ध्यान करने को भक्ति माना है।

मध्ययुगीन संत कवियों ने भक्ति को कर्म से श्रेष्ठ बताया है। वहीं दूसरी और सगुण भक्ति काव्य की रचना करने वाले कवि सूर एवं तुलसी ने भी भक्ति को श्रेष्ठ बताया है। सूर भक्ति को भगवान के बिना असंभव मानते हैं। (रे मन समुझि सोचि विचार, भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि। - सूर सागर) तो वहीं तुलसी भक्ति को सुन्दर सदैव प्रकाशित रहने वाली चिन्तामणि मानते हैं। (राम भक्ति चिन्ता मणि सुन्दर .... परम प्रकाश रूप दिन राती ..... - रामचरित मानस), अत: भक्ति ईश्वर के प्रति हृदय में उत्पन्न परम अनुराग है जहां कर्म एवं बुद्धि की कोई अपेक्षा नहीं रहती।

रूप गोस्वामी ने भक्ति के दो प्रकार बताएँ हैं। एक 'साधना रूपा' और दूसरी 'साध्य रूपा'। पहली भक्ति को गौणी भक्ति के नाम से भी जाना जाता है जबकि दूसरे प्रकार की भक्ति को परा भक्ति भी कहते हैं। ईश्वर की महिमा और दया आदि के स्मरण से साधक के हृदय में भक्ति की प्रथम अवस्था उत्पन्न होती है, जोकि गौणी भक्ति कहलाती है। इस भक्ति के दो भेद हैं वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। जिस भक्ति में केवल शास्त्रोक्त विधि का पालन होता है उसे वैधी भक्ति कहते हैं। जिस प्रेम भाव की दशा में भक्त के हृदय में परम शान्ति का उदय होता है उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। रागानुगा भक्ति के भी दो भेद बताए गए हैं कामरूपा और सम्बन्धरूपा। गोपियों की भक्ति कामरूपा भक्ति के अन्तर्गत आती है जबकि दास्य सख्य, वात्सल्य, दाम्पत्य का माधुर्य भक्ति के अन्तर्गत आती है। वैधी और रागानुगा भक्ति साधन दशा की भक्ति है परा भक्ति अर्थात् साध्य भक्ति इससे आगे की अवस्था में आती है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति के चार भेद बताए हैं– सात्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुण। सगुण भक्त कवियों ने प्रथम तीन प्रकार की भक्ति को अपने काव्य में विशेष स्थान दिया है। साधना के दृष्टिकोण से भागवत में भक्ति के नौ भेद और गिनाए गए हैं जिसे नवधा भक्ति कहा जाता है। नवधा भक्ति, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, संख्य और आत्म-निवेदन के नाम से उल्लेखित है। प्रथम छ: को वैधी भक्ति के अन्तर्गत लेते हैं जबकि अन्तिम तीन को रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत लेते हैं। प्राय: सभी सगुण भक्ति धारा के भक्त कवियों एवं आचार्यों ने नवधा भक्ति का निरुपण किया है।

वैदिक साहित्य के अनुसार परब्रह्म निराकार है। ब्रह्म प्रकृति और जीव के गुणों से परे हैं। निगुण होते हुए भी ब्रह्म स्वाभाविक गुणों से युक्त होता है, अतः सगुण है। सगुण का अर्थ साकार से न होकर जीव से परे दिव्य गुणों से युक्तता से है। उपनिषदों में परम तत्त्व के दो रूप बताए गए हैं– निर्गुण या परब्रह्म, सगुण या अपर ब्रह्म सगुण सविशेष साकार और उपाधियुक्त है, जबकि निर्गुण विशेष आकार एवं उपाधि से परे है। ब्रह्म अपने वास्तविक रूप में तो निर्गुण ही है, किन्तु उपासना के हेतु हम उसकी कल्पना सगुण साकार रूप में करते हैं।

कुछ लोगों के अनुसार परमात्मा को साकार मानने से उसमें एक देशीयता का दोष आ जाता है। ब्रह्म जब सर्वगुण सम्पन्न है तो रूप सम्पत्ति का दरिद्र क्यों रहे। अतएव ब्रह्म निराकार, साकार, निर्गुण, सगुण सभी है। निराकार ब्रह्म की भक्त उपासना के हेतु साकार रूप में कल्पना करता है। ब्रह्म जीव के गुणों से युक्त नहीं है, अतः निर्गुण है। स्वगुणों से युक्त है, अतः सगुण है।

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के गौरवशाली कवि हैं। वे पूर्वमध्य काल की सगुण काव्य धारा से संबंध रखते हैं। उनके आराध्य देव दशरथपुत्र राम हैं। इन्हें राम भक्ति का सबसे श्रेष्ठ कवि माना जाता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में राम के प्रति अनन्य भक्ति भाव को प्रकट किया है। तुलसीदास ने विद्वानों आचार्यों द्वारा बताए गए भक्ति के आधार को स्वीकार किया और कहा कि राग और क्रोध को जीतकर नीति पथ पर चलते हुए राम की प्रीति करना ही भक्ति है।

भक्ति का आलम्बन ही भक्त का ईष्ट होता है। इसीलिए तुलसी के इष्टदेव राम ही है। राम विष्णु के अवतार हैं। कहा जाता है कि जब पृथ्वी पर अनाचार की अति होती है तो भक्तों के कल्याण हेतु ईश्वर पृथ्वी पर अवतार अर्थात् साकार रूप लेकर पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। तुलसी के राम निर्गुण-सगुण दोनों ही रूपों में नजर आते हैं। (जग कारन तारन भय भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार यमानस) इनके अनुसार निर्गुण भगवान ही सगुण रूप में प्रकट होते हैं अर्थात् सगुण और निर्गुण के भेद को तुलसी नहीं मानते। (सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।।)

तुलसी ने अध्यात्म रामायण को अपना आधार माना है इसमें विष्णु के अवतार राम के स्वरूप का विशद् वर्णन है। तुलसी ने इसे ही मानस में स्थान दिया है जबकि वहाँ राम विष्णु के अवतार न होकर ब्रह्म के अवतार है। तुलसी ने अध्यात्म रामायण के राम के समान ही अपने मानस में राम का स्वरूप व्यक्त किया है।

तुलसी के राम अन्य देवी-देवताओं से सर्वोपरि है। वे अन्य देवी-देवताओं की भांति प्रसन्न होकर वरदान तो देते हैं, परन्तु रूष्ट होकर श्राप नहीं देते, अतः राम को यदि कोई गलती से भी स्मरण कर लें, तो भी राम उस पर अपनी सम्पूर्ण दया दृष्टि डालते हैं। राम की प्रवृति बिल्कुल विलक्षण है। उन्हें हमेशा दीन-हीन ही प्रिय होते हैं। वे शरणागत की रक्षा करने में तो अतुलनीय है। अन्य देव 'बलि पूजा' के भी भूखे होते हैं, किन्तु राम केवल प्रीति चाहते हैं अर्थात् सुमिरन से ही भला मानते हैं। राम का चरित्र समस्त सुखों को देना और दुःखों का निवारण करना ही है। राम के समान अन्य कोई भी सुर, नर, मुनि दीन लोगों की पीड़ा समझने वाला नहीं है- (दोष-दुःख-दरिद्र, दलैया दीनबन्धु राम। 'तुलसी' न दूसरो या दया निंधान दुनी मैं।।) तुलसी के राम पापियों में भी श्रेष्ठ पापी की भक्ति से भी खुश होकर उसको जन्म जमान्तर के पापों से मुक्त कर देते हैं। परम भय से युक्त व्यक्ति को तुरन्त ही भय मुक्त कर देते हैं। यहाँ तक कि विश्वद्रोह कृत अध का भार भी सिर पर लादे हुए यदि कोई राम की शरण में आता है तो वह भी त्याज्य नहीं होता, अतः राम की शरणगत-वत्सलता के प्रमाण स्वरूप दोहावली, गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका और मानस में अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं। एक मां जिस प्रकार अपने शिशु का ध्यान रखती है स्वयं राम उसी प्रकार अपने शरणागत को ध्यान रखते हैं।

राम की परमोदारता अकथनीय है। वे बिना सेवा से भी प्रसन्न हो जाते हैं जिसके कारण राम अपने प्रिय जनों को वो पद दे देते हैं, जो बड़े-बड़े ऋषि मुनि विभिन्न योग, तप करके भी प्राप्त नहीं कर पाते। परम स्नेही राम ने शबरी को वह पद दिया। इतना ही नहीं जो वैभव रावण ने घोर तपस्या करके शिव की कृपा से प्राप्त किया था उसे राम सहज ही बिना संकोच के सुग्रीव को सौंप देते हैं, अहिल्या का उद्धार किया, नीच निषाद को सखा बनाकर दोनों ही लोकों में कीर्ति प्रदान की। वन्य प्राणी बन्दर-भालू को भी अपने परम स्नेह से नवाजा आदि अनेकों उदाहरण हमें राम की उदारता के तुलसी के काव्य में मिलते हैं।

परम औदार्य के कारण राम कोमलता, कारुण्य, कृपा, दया, क्षमा परोपकार आदि विशिष्ट गुणों से सम्पन्न है। स्वयं भरत और दशरथ राम के गुण रूप और शील का चिन्तन करते दिखाई देते हैं। स्वभाव से ही क्रुद्ध होने वाले स्वयं परशुराम राम के शील पर मुग्ध होकर कहते हैं- ('विनय सील करुना-गुन-सागर।

जयति बचन रचना अति नागर।। - मानस बाल काण्ड - 284), अत: राम का शील स्वभाव मन को आनंदित करने वाला तन को रोमान्चित और आंखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करने वाला है।

राम का सौन्दर्य कल्पनातीत है। परम विरागी, ब्रह्मज्ञानी, विज्ञानी व्यक्ति अपने ब्रह्मचिन्तन के अपार आनन्द को ठुकराकर राम के रूप की स्तुति करते हैं। प्रत्यक्ष क्या यदि किसी ने स्वपन में भी राम के दर्शन किए तो भी वह उसकी अनुभूति प्राप्त कर सकता है। राम के प्रत्येक अंग की ऊष्मा अप्रतिम है भक्तजन-सुखदायी हैं। उसके शरीर की छवि पर करोड़ों कामदेव निछावर हैं। उनके 'विपिन बिहारी तरकशधारी' रूप को अनेकों रामोपासक ध्यान करते हैं। स्वयं सरस्वती आदि भी राम की अपार शोभा का वर्णन करने में असमर्थ हैं। तुलसी के राम सर्वशक्तिशाली हैं। वे अकेले ही रणभूमि में यदि अचल हो भी जाए तो भी सारे सुर-असुर एक होकर भी राम को परास्त नहीं कर सकते। राम में इतना सामर्थ्य है कि उनके 'भृकुटी विकास' मात्र से संसार की स्थित और प्रलय दोनों होते हैं। वे तृण को वज्र और वज्र को तृण रूप में बदल सकते हैं। राम के धनुष-संधान मात्र से समुद्र भी त्रस्त होकर कंपित होने लगता है।

अत: इस प्रकार राम के चरित्र की अनेकों गाथाएँ हैं, जो राम को मनुष्य से अलग करती है और त्रिदेव (विधि-हरि-हर) उनके बार-बार समीप आते हैं और उन्हें विभिन्न वरदान देने के लिए उत्सुक होते हैं। वे तो सर्वज्ञ प्रभु महा विष्णु या परमात्मा ब्रह्म हैं। इसी के अंश से विभिन्न त्रिदेवों की उत्पत्ति होती है। जिस अनादि अनन्त ब्रह्म की महिमा के गान में असमर्थ होकर, वेद केवल अनुमान के सहारे सब भांति अलौकिक करनी वाला जिसे घोषित करते हैं वे केवल भक्त हितकारी कोमल पति राम है। उपासना का मूल आधार श्रद्धा है। जिसके तीन भेद बताए गए हैं सात्विकी, राजसी और तामसी। सात्विक उपासना का आलम्बन दैवीय शक्ति सम्पन्न देव होता है। राजसी उपासना का आलम्बन यक्षों की कोटि का देव या दानव होता है। तामस उपासना का आलम्बन भूत-प्रेतगण होते हैं।

तुलसी की उपासना सात्विक उपासना है क्योंकि इसका आलम्बन महान दैवी शक्तियों का सागर देवों का देव है। इसका लक्ष्य निष्काम, अविचल, अटल, अनन्य प्रेम है। इस उपासना में किसी प्रकार का कोई आदान-प्रदान नहीं है। राम के प्रति अपने अनन्य प्रेम को व्यक्त करने के लिए तुलसी मीन और चातक को प्रतीक रूप में ग्रहण करके कहते हैं कि जिस प्रकार मीन जल के बिना नहीं

रह सकती और चातक स्वाति की बूँद के सिवा अन्य कोई जल ग्रहण नहीं कर सकता। ठीक उसी प्रकार गोस्वामी जी भी राम के प्रेम के बिना नहीं रह सकते। यही उनकी मीनता और चातकता है। तुलसी के राम सीधे सच्चे भाव के भूखे हैं। यदि लेशमात्र भी छद्म भाव से कोई राम की उपासना करता है, तो राम उस उपासक को नहीं चाहते। राम की उपासना के लिए निर्मल हृदय का होना अत्यंत आवश्यक है, तभी राम के दर्शन संभव है। साधक चराचर को राममय देखकर स्वत: ही वंदना करने लगता है, जोकि रामोपासना का चरमोत्कर्ष है। तुलसी की रामोपासना के लिए गृह-त्याग को आवश्यक नहीं माना गया है और न ही गृहासक्ति को आवश्यक माना गया है। साधक के लिए विशेष स्थान की अनिवार्यता नहीं है। वह जंगल या गृह कहीं पर भी उपासना कर सकता है। जब साधक समस्त विकारों से रहित होता है, तो वह स्वयं प्रकाशमान हो जाता है। मन की निर्मलता ही रामोपासना का प्रधान अंग है। गोस्वामी जी आगम-निगम पुराण के साथ ही परम्परा के भी पक्के अनुयायी हैं। उपासना के साथ-साथ आचार के द्वारा भी साधक राम की कृपा प्राप्त कर सकता है। यहाँ तुलसी आचार का स्वरूप वेद-पुराणों में बताए गए स्वरूप को ही स्थान देते हैं। उपासक को अपने मन, वाणी और कर्म - तीनों को अनाचार के शिकंजे से दूर रखना चाहिए। अन्यथा राम की साधना सफल नहीं होगी। यदि साधन बाह्य वेश हसवत् और आन्तरिक भाव निम्न कोटि की होगी तो उसकी साधना अनाचारमय ही होगी इसीलिए कवितावली में कहा है - 'करि हंस को वेष बड़ों सब सों, तजि दे बक बायस की करनी'।।

तुलसीदास जी ने नामोपसना का भी समर्थन किया है। उसका अत्याधिक महत्त्व भी बताया है। कलियुग में संसार रूपी भव सागर को पार करने का एक ही साधन है और वह है राम का नाम। सत्य युग, त्रेता और द्वापर युगों में, जो गति लोगों को ध्यान, यज्ञ और पूजा से प्राप्त होती थी वही गति कलियुग में जो लोग राम का नाम लेते हैं उन्हें प्राप्त हो जाती है। नाम कल्पत: है इसे केवल कवि कल्पना नहीं समझना चाहिए क्योंकि इसी से गोस्वामी जी ने अभिमत फलदायकत्व लक्षित किया है। तुलसी के अनुसार निष्काम भाव, अनन्य प्रेम, श्रद्धा और विश्वास से ही नाम-जप अपना प्रभाव दिखाता है। राम और नाम में तारतम्य की चर्चा करते हुए तुलसी नाम को राम से प्रबल मानते हैं और मानस में कह देते हैं - 'ब्रह्म राम ते नाम बड़ बरदायक बरदानि। रामचरित सत कोटि महँ लिए महस जिय जानि।।'

मध्ययुग में कथा श्रवण और कीर्तन का विशेष महत्त्व रहा था। इससे पहले कभी भी इन दोनों साधनों का इतना महत्त्व नहीं रहा। कलियुग में भक्ति के अन्य साधन प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था। आर्थिक दृष्टि से देश की अवस्था बहुत ही दैन्य थी। बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन करना बहुत ही कठिन था। सत्ता में अन्य मत ही अधिक प्रबल था। सूफी, संतों ने दोनों ही मतों में समन्वय करने के लिए अंत: साधना पर बल दिया। इससे न तो जनता को किसी प्रकार की तृप्ति मिल रही थी, न ही सामूहिक धर्म चेतना का विकास हो पा रहा था। इस विपत्ति के समय यह बहुत आवश्यक था कि जनता संतुष्ट हो और सामूहिक धर्म का विकास हो। इसीलिए भक्त साधकों ने कथा, श्रवण कीर्तन और नित्य पूजन की सामूहिक विधियां निकाली।

मानस में भगवान श्री राम के रूप सौंदर्य का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया विशेषत: बालकाण्ड और अयोध्या काण्ड में। राम ध्यान के कारण कई काण्डों में मंगलाचरण के रूप में राम के स्वरूप का वर्णन मिलता है। 'रूप पूजा' पूजा का अंतिम चरण है। ईसा की दूसरी शताब्दी में वैष्णव पुन:त्थान के समय बौद्ध मंदिरों की होड़ में हिन्दू मंदिरों का आविर्भाव हुआ और त्रिमूर्ति की स्थापना देश के कोने-कोने में हो गई। 5-6 शताब्दियों में मूर्ति पूजा का उत्तरोतर विकास हुआ और कला (स्थापत्य, मूर्ति, चित्र) को उपासना के इस बाह्य रूप को संवारने का अवसर प्राप्त हुआ इसके परिणाम स्वरूप 16वीं शताब्दी में यह रूपोपासना तुलसी एवं सूर के काव्य में चरमोत्कर्ष रूप में मिलती है।

राम भक्ति साधना का कोई एक मार्ग निश्चित नहीं है। तुलसी ने अनेक साधन गिनाए हैं जिसमें भक्ति योग और नवधा भक्ति प्रधान है, किन्तु उत्तर काण्ड में काग भुशुण्डि प्रसंग में पन्चधा साधनों का भी उल्लेख मिलता है। वे साधन हैं - श्रद्धा, ज्ञान, मति, इंद्रीय, संयम और निष्ठा। अन्त में तुलसी ने इन सभी साधनों का एक ही अंत बताया है, सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दर्शन पावा-मानस।' भारतीय धार्मिक परम्परा में साधना के तीन मार्ग हैं ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग। तुलसी ने कर्म मार्ग को मानस में स्थान नहीं दिया है। तुलसी ने भक्ति को ज्ञान से ऊपर प्रतिष्ठित किया है। ज्ञान को भक्ति की नींव मानते हैं। ज्ञान के साधनों को ही भक्ति का साधन बना दिया है। वैराग्य, ध्यान और विवेक तथा अंतर्दृष्टि। वैराग्य का अर्थ सांसारिक विषयों का त्याग, ध्यान का अर्थ साकार से है। जिसका संबंध राम से। ध्यान में प्रेम और

आत्म-समर्पण के भावों में गहरा संबंध है। विवेक और अंतर्दृष्टि को तुलसी अपनी साधना पद्धति में प्रमुख स्थान देते हैं।

मानस के अन्तर्गत जिस भक्ति की प्रतिष्ठा की गई वह वैधी भक्ति है। वह शास्त्रोक्त नवधा भक्ति ही वैधी भक्ति है। वन में जब भगवान श्री राम बाल्मीकि से रहने का स्थान पूछते हैं तो उत्तर में महर्षि भक्ति के नौ अंगों का ही वर्णन करते हैं - श्रवण कीर्तन स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन।

तुलसीदास ने भक्ति के इन सभी प्रकारों का वर्णन अपने काव्य में किया है। श्रवण भक्ति का प्रधान हेतु महापुरुषों का सत्संग होता है। जहां भी अवसर मिला तुलसीदास ने श्रवण भक्ति का महत्त्व बताने में चूक नहीं की। (श्रवण - जिनके स्त्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारी सुभग सरि नाना।। - मानस अयोध्या काण्ड-126।।) भगवान के किसी रमणीय स्वरूप का बाह्य सामग्री से सेवा पूजन करना अर्चन भक्ति है इसके लिए पूजन की अनेक सामग्री है जैसे धूप, दीप, नेवैद्य आदि। (आरती करहि मुदित पुर नारी। हरषहि निरखि कुँअर बर चारी।। - मानस बाल काण्ड - 347) कोल किरात जैसे असभ्य बनचारी लोग अर्चन की कोई विधि नहीं जानते, किन्तु दोना भर-भर कर कन्द मूल भगवान के चरणों में अर्पित करते हैं। (कंद-मूल, भरी-भरी दोना। चले रंक जनु लूटन सोना - मानस अयोध्या काण्ड - 132) आत्म-निवेदन भक्ति में भक्त अहंकार शून्य होकर अपना तन, मन, धन, जन सर्वस्व प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है। इसे शरण भक्ति भी कह सकते हैं। सोते जागते केवल प्रभु की शरण की आकांक्षा रहती है। (जागत सोवत सरन तुम्हारी - मानस अयोध्या - 128) इस प्रकार तुलसी ने अन्य भक्ति का भी वर्णन अपने काव्य में किया है, किन्तु इनकी भक्ति में दास्य भाव अधिक मिलता है। इससे इन्होंने शरणागति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सुग्रीव और विभीषण शरणागत भक्त ही हैं, अतः तुलसी की दास्य भावना ने राम को स्वामी के रूप में ही देखा है। तुलसी ने जिस पारम्परिक भक्ति मार्ग का आलम्बन किया। उसे जिस प्रकार विकसित किया उसमें कोई साम्प्रदायिक स्वरूप नहीं है। कोई किसी भी देश जाति किसी भी मत का हो वह भक्ति कर सकता है।

सच्चा भक्त वह है, जो ईश्वर के प्रति निश्छल प्रेम रखता है भक्ति की ओर उन्मुख होने वाले भक्तों के चार प्रकार बताए हैं - आर्त, जिज्ञासा, अथार्थी और ज्ञानी। भक्त कवियों ने प्रायः सभी प्रकार के भक्तों का किसी ना किसी

रूप में वर्णन किया है। तुलसीदास ने तो चारों ही प्रकार के भक्तों के भावों की अभिव्यक्ति की है उनके काव्य में आर्त भक्त का उदाहरण पार्वती है। जिज्ञासु भक्त का उदाहरण तुलसी के काव्य में गरूण है। अथार्थी भक्त भी तुलसी ने वर्णित किए हैं, जो राम की कथा को निष्कपट होकर गाता है उसके जीवन की सारी मनोकामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। ज्ञानी भक्त का उदाहरण याज्ञवल्क्य है। उनके वर्णन एक ज्ञानी भक्त के उद्‌गार को व्यक्त करने वाले हैं।

तुलसी के समय देश में विभिन्न प्रकार की भक्ति की साधना चल रही थी। जैसे संतों की योग साधना, सूफियों की प्रेम साधना। किन्तु तुलसी ने सिर्फ राम भक्ति को ही स्वीकार किया। उस समय अन्य देव-देवताओं की भक्ति साधना भी चल रही थी, किन्तु तुलसी का मन जितना राम की भक्ति में रमा उतना अन्य किसी देव-देवता की भक्ति में नहीं रमा। तुलसी के आराध्य देव राम हैं। इसका अर्थ यह कदाचित् नहीं की उन्होंने अन्य भक्ति साधना या देव-देवताओं की निंदा की हो। उन्होंने सभी लोक साधनाओं को आदर और प्रेम भाव से देखा है। साधना के सभी अंगों पर प्रकाश डालते हुए तुलसी ने मुख्यतः नाम स्मरण को ही महत्त्व दिया है। हरि भक्ति साधना में श्रद्धा एवं विश्वास की अत्यन्त आवश्यकता होती है। स्वयं तुलसी की साधना दास्यभाव की भक्ति है। जिसका मूल यंत्र शरणागति है। कवितावली इसी दास्य भाव से ओत-प्रोत है, अतः भक्ति का फल ही यही है कि इस भक्ति चिन्तामणि के पास रहने से मानस-रोग (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर) निर्बल हो जाते हैं, अतः तुलसी के अनुसार भक्ति से चरित्र का विकास होता है विशेषाधिकार की प्राप्ति होती है ओर विश्राम प्राप्त होता है।

3

तुलसी की भक्ति-पद्धति

तुलसी की भक्ति-पद्धति

हम्मीर के समय में चारणों का वीरगाथा काल समाप्त होते ही हिन्दी कविता का प्रवाह राजकीय क्षेत्रों से हटकर भक्तिपथ और प्रेमपथ की ओर चल पड़ा। देश में मुसलमान साम्राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने पर वीरोत्साह के सम्यक् संचार के लिए वह स्वतन्त्र क्षेत्रों में न रह गया, देश का ध्यान अपने पुरुषार्थ और बल पराक्रम की ओर से हटकर भगवान की शक्ति और दया दाक्षिण्य की ओर गया। देश का वह नैराश्य काल था जिसमें भगवान के सिवाय और कोई सहारा नहीं दिखाई देता था। रामानन्द और वल्लभाचार्य ने जिस भक्तिरस का प्रभूत संचय किया, कबीर और सूर आदि की वाग्धारा ने उसका संचार जनता के बीच किया। साथ ही कुतबन, जायसी आदि मुसलमान कवियों ने अपनी प्रबन्ध रचना द्वारा प्रेमपथ की मनोहरता दिखाकर लोगों को लुभाया। इस भक्ति और प्रेम के रंग में देश ने अपना दुःख भुलाया, उसका मन बहला।

भक्तों के भी दो वर्ग थे। एक तो भक्ति के प्राचीन स्वरूप को लेकर चला था, अर्थात् प्राचीन भागवत सम्प्रदाय के नवीन विकास का ही अनुयायी था और दूसरा विदेशी परम्परा का अनुयायी, लोकधर्म से उदासीन तथा समाज व्यवस्था और ज्ञान-विज्ञान का विरोधी था। यह द्वितीय वर्ग जिस घोर नैराश्य की विषम स्थिति में उत्पन्न हुआ, उसी के सामंजस्य साधन में सन्तुष्ट रहा।

उसे भक्ति का उतना ही अंश ग्रहण करने का साहस हुआ जितने की मुसलमानों के यहाँ भी जगह थी। मुसलमानों के बीच रहकर इस वर्ग के महात्माओं का भगवान के उस रूप पर जनता की भक्ति को ले जाने का उत्साह न हुआ, जो अत्याचारियों का दमन करनेवाला और दुष्टों का विनाश कर धर्म को स्थापित करने वाला है। इससे उन्हें भारतीय भक्तिमार्ग के विरुद्ध ईश्वर के सगुण रूप के स्थान पर निर्गुण रूप ग्रहण करना पड़ा, जिसे भक्ति का विषय बनाने में उन्हें बड़ी कठिनता हुई।

प्रथम वर्ग के प्राचीन परम्परा वाले भक्त वेद शास्त्रज्ञ तत्त्वतदर्शी आचार्यों द्वारा परवर्तित सम्प्रदायों के अनुयायी थे। उनकी भक्ति का आधार भगवान का लोक धर्मरक्षक और लोकरंजक स्वरूप था। इस भक्ति का स्वरूप नैराश्यमय नहीं है, इसमें उस शक्ति का बीज है, जो किसी जाति को फिर उठाकर खड़ा कर सकता है। सूर और तुलसी ने इसी भक्ति के सुधारस से सींचकर मुरझाते हुए हिन्दू जीवन को फिर से हरा किया। पहले भगवान का हँसता-खेलता रूप दिखाकर सूरदास ने हिन्दू जाति की नैराश्यजनित खिन्नता हटाई जिससे जीवन में फ्रुल्लता आ गई। पीछे तुलसीदास जी ने भगवान का लोक व्यापार व्यापी मंगलमय रूप दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया। अब हिन्दू जाति निराश नहीं है।

घोर नैराश्य के समय हिन्दू जाति ने जिस भक्ति का आश्रय लिया, उसी की शक्ति से उसकी रक्षा हुई। भक्ति के सच्चे उद्धार ने ही हमारी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की और मानव जीवन की सरसता दिखाई। इस भक्ति के विकास के साथ ही साथ इसकी अभिव्यंजना करने वाली वाणी का विकास भी स्वाभाविक था, अतः सूर और तुलसी के समय हिन्दी कविता की जो स्मृद्धि दिखाई देती है, उसका कारण शाही दरबार की कद्रदानी नहीं है, बल्कि शाही दरबार की कद्रदानी का कारण वह स्मृद्धि है। उस स्मृद्धि काल के कारण हैं, सूर-तुलसी, और सूर-तुलसी का उत्पादक है इस भक्ति का क्रमशः विकास जिसके अवलम्बन थे राम और कृष्ण। लोक मानस के समक्ष राम और कृष्ण जब फिर से स्पष्ट करके रखे गए, तभी से वह उनके एक-एक स्वरूप का साक्षात्कार करता हुआ उसकी व्यंजना में लग गया। यहाँ तक कि सूरदास तक आते-आते भगवान की लोकरंजनकारिणी फ्रुल्लता की पूर्ण व्यंजना हो गई। अन्त में उनकी अखिल जीवन वृत्ति व्यापिनी कला को अभिव्यक्त करने वाली वाणी का मनोहर स्फुरण तुलसी के रूप में हुआ।

इस दिव्य वाणी का मंजू घोष घर-घर क्या, एक-एक हिन्दू के हृदय तक पहुँच गया कि भगवान दूर नहीं हैं, तुम्हारे जीवन में मिले हुए हैं। यही वाणी हिन्दू जाति को नया जीवनदान दे सकती थी। उस समय यह कहना कि ईश्वर सबसे दूर है, निर्गुण है, निरंजन है, साधारण जनता को और भी नैराश्य के गड्ढे में ढकेलता। ईश्वर बिना पैर के चल सकता है, बिना हाथ के मार सकता है और सहारा दे सकता है, इतना और जोड़ने से भी मनुष्य की वासना को पूरा आधार नहीं मिल सकता। जब भगवान मनुष्य के पैरों से दीन दुखियों की पुकार पर दौड़कर आते दिखाई दें और उनका हाथ मनुष्य के हाथ के रूप में दुष्टों का दमन करता और पीड़ितों को सहारा देता दिखाई दे, उनकी आँखें मनुष्य की आँखें होकर आँसू गिराती दिखाई दें, तभी मनुष्य के भावों की पूर्ण तृप्ति हो सकती है और लोकधर्म का स्वरूप प्रत्यक्ष यूरोप में ईसाई धर्म के भक्त उपदेशकों द्वारा ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के मार्ग में किस प्रकार बाधा पड़ती रही है, यह वहाँ का इतिहास जानने वाले मात्र जानते हैं।

हो सकता है। इस भावना का हिन्दू हृदय से बहिष्कार नहीं हो सकता। जहाँ हमें दिन-दिन बढ़ता हुआ अत्याचार दिखाई पड़ा कि हम उस समय की प्रतीक्षा करने लगेंगे जब वह 'रावणत्व' की सीमा पर पहुँचेगा और 'रामत्व' का आविर्भाव होगा। तुलसी के मानस से रामचरित की, जो शील शक्ति सौन्दर्यमयी स्वच्छ धरा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँचकर भगवान के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया। रामचरित की इसी जीवन व्यापकता ने तुलसी की वाणी को राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पंडित सबके हृदय और कंठ में सब दिन के लिए बसा दिया। किसी श्रेणी का हिन्दू हो, वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है-सम्पत्ति में, विपत्ति में, घर में, वन में, रणक्षेत्रों में, आनन्दोत्सव में, जहाँ देखिए, वहाँ राम। गोस्वामी जी ने उत्तारापथ के समस्त हिन्दू जीवन को राममय कर दिया। गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी के प्रभाव से आज भी हिन्दू भक्त अवसर के अनुसार सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, महत्त्व पर श्रद्धा करता है, शील की ओर प्रवृत्त होता है, सन्मार्ग पर पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य धरण करता है, कठिन कर्म में उत्साहित होता है, दया से आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है, शिष्टता का अवलम्बन करता है और मानवजीवन के महत्तव का अनुभव करता है।

जिस विदेशी परम्परा की भक्ति का उल्लेख ऊपर हुआ है उसके कारण विशुद्ध भारतीय भक्तिमार्ग का स्वरूप बहुत कुछ आच्छन्न हो चला था। गोस्वामी जी की सूक्ष्म दृष्टि किस प्रकार इस बात पर पड़ी यह आगे दिखाया जायेगा। भारतीय भक्ति मार्ग और विदेशी भक्ति मार्ग में जो स्वरूप भेद है उसका संक्षेप में निरुपण हम यहाँ पर कर देना चाहते हैं।

हमारे यहाँ ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और योग मार्ग तीनों अलग-अलग रहे हैं। ज्ञान मार्ग शुद्ध बुद्धि की स्वाभाविक क्रिया अर्थात् चिन्तन पद्धति का आश्रय लेता है, भक्ति मार्ग शुद्ध हृदय की स्वाभाविक अनुभूतियों अर्थात् भावों को लेकर चलता है, योग मार्ग चित्त की वृत्तियों को अनेक प्रकार के अभ्यासों द्वारा अस्वाभाविक (एबनॉर्मल) बनाकर अनेक प्रकार की अलौकिक सिद्धियों के बीच होता हुआ अन्त:स्थ ईश्वर तक पहुँचना चाहता है। इस स्पष्ट विभाग के कारण भारतीय परम्परा का भक्त न तो पारमार्थिक ज्ञान का दावा करता है, न अलौकिक सिद्धि या रहस्य दर्शन का। तत्वज्ञान के अधिकारी तर्क बुद्धि सम्पन्न चिन्तनशील दार्शनिक ही माने जाते थे। सूर और तुलसी के सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जाता है कि उन्होंने भगवान के दर्शन पाए थे।

यह जनश्रुति है कि तुलसीदास जी को चित्रकूट में राम की एक झलक जंगल के बीच में मिली थी। इसका कुछ संकेत-सा विनय पत्रिका के इस पद में मिलता है-'तुलसी तोको कृपाल जो कियो कोसलपाल चित्रकूट को चरित्र चेतु चित्त करि सो।'

भारतीय पद्धति का भक्त यदि झूठा दावा कर सकता है तो यही कि मैं भगवान के ही प्रेम में मग्न रहता हूँ, यह नहीं कि जो बात कोई नहीं जानता वह मैं जान बैठा हूँ। प्रेम के इस झूठे दावे से, इस प्रकार के पाखंड से, अज्ञान के अनिष्ट प्रचार की आशंका नहीं।

भारतीय भक्त का प्रेममार्ग स्वाभाविक और सीधा है जिस पर चलना सब जानते हैं, चाहे चलें न। वह ऐसा नहीं जिसे कोई विरला ही जानता हो या पा सकता हो। वह तो संसार में सबके लिए ऐसा ही सुलभ है, जैसे अन्न और जल-

निगम अगम, साहब सुगम, राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माँह॥

सरलता इस मार्ग का नित्य लक्षण है-मन की सरलता, वचन की सरलता और कर्म की सरलता-

सूधो मन, सूधो बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥

भारतीय परम्परा के भक्त में दुराव, छिपाव की प्रवृत्ति नहीं होती। उसे यह प्रकट करना नहीं रहता कि जो बातें मैं जानता हूँ उन्हें कोई विरला ही समझ सकता है, इससे अपनी वाणी को अटपटी और रहस्यमयी बनाने की आवश्यकता उसे कभी नहीं होती। वह सीधी सादी सामान्य बात को भी रूपकों में लपेटकर पहेली बनाने और असंबद्धता के साथ कहने नहीं जाता। बात यह है कि वह अपना प्रेम किसी अज्ञात के प्रति नहीं बताता। उसका उपास्य ज्ञात है। उसके निकट ईश्वर ज्ञात और अज्ञात दोनों है। जितना अज्ञात है उसे तो वह परमार्थान्वेषी दार्शनिकों के चिन्तन के लिए छोड़ देता है और जितना ज्ञात है उसी को लेकर वह प्रेम में लीन रहता है। तुलसी कहते हैं कि जिसे हम जानेंगे, वही हमें जानेगा-

जाने जानत, जोइए, बिनु जाने को जान?

पर पाश्चात्य दृष्टि में भक्ति मार्ग 'रहस्यवाद' के अन्तर्गत ही दिखाई पड़ता है। बात यह है कि पैगम्बरी (यहूदी, ईसाई, इस्लाम) मतों में धर्म व्यवस्था के भीतर तत्त्वैचिंतन या ज्ञानकांड के लिए स्थान न होने के कारण आध्यात्मिक ज्ञानोपलब्धि रहस्यात्मक ढंग से (स्वप्न, सन्देश, छायादर्शन आदि के द्वारा) ही माननी पड़ती थी। पहुँचे हुए भक्तों और सन्तों(सेंट्स) के सम्बन्ध में लोगों की यह धारणा थी कि जब वे आवेश की दशा में बाह्य ज्ञानशून्य होते हैं तब भीतर ही भीतर उनका 'ईश्वर के साथ संयोग' होता है और वे छायारूप में बहुत-सी बातें देखते हैं। ईसाई धर्म में जब स्थूल एकेश्वरवाद (जो वास्तव में देववाद ही है) के स्थान पर प्राचीन आर्य दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित 'सर्ववाद' (पेनथीज्म) लेने की आवश्यकता हुई तब वह बुद्धि द्वारा प्रस्तुत ज्ञान के रूप में तो लिया नहीं जा सकता था, ईश्वर द्वारा रहस्यात्मक ढंग से प्रेषित ज्ञान के रूप में ही लिया जा सकता था। इससे परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध की वे ही बातें, जो यूनान या भारत के प्राचीन दार्शनिक कह गए थे, विलक्षण रूपकों द्वारा कुछ दुर्बोध और स्पष्ट बनाकर सन्त लोग कहा करते थे। अस्पष्टता और असंबद्धता इसलिए आवश्यक थी कि तथ्यों का साक्षात्कार छायारूप से ही माना जाता था। इस प्रकार अरब, फारस तथा यूरोप में भावात्मक और ज्ञानात्मक रहस्यवाद का चलन हुआ।

भारत में धर्म के भीतर भी ज्ञान की प्रकृत पद्धति और प्रेम की प्रकृत पद्धति स्वीकृत थी, अतः भावात्मक और ज्ञानात्मक रहस्यवाद की कोई

आवश्यकता न हुई। साधनात्मक और क्रियात्मक रहस्यवाद का अलबत योग, तन्त्र और रसायन के रूप में विकास हुआ। इसके विकास में बौद्धों ने बहुत कुछ योग दिया था। हठयोग की परम्परा बौद्धों की ही थी। मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ ने उसे शैव रूप दिया। गोरखपन्थ का प्रचार राजपूताने की ओर अधिक हुआ, इसी से उस पन्थ के ग्रन्थ राजस्थानी भाषा में लिखे गए हैं। मुसलमानी शासन के प्रारम्भ काल में इसी पन्थ के साधु उत्तरीय भारत में अधिक घूमते दिखाई देते थे जिनकी रहस्यभरी बातें हिन्दू और मुसलमान दोनों सुनते थे। मुसलमान अधिकतर खड़ी बोली बोलते थे, इससे इस पन्थ के रमते साधु राजस्थानी मिली खड़ी बोली का व्यवहार करने लगे। इस प्रकार एक सामान्य सधुक्कड़ी भाषा बनी जिसका व्यवहार कबीर, दादू और निर्गुणी सन्तों ने किया।

अरब और फारस का भावात्मक रहस्यवाद लेकर जब सूफी हिन्दुस्तान में आए तब उन्हें यही रहस्योन्मुख सम्प्रदाय मिला। इसी से उन्होंने हठयोग की बातों का बड़ी उत्कंठा के साथ अपने सम्प्रदाय में समावेश किया। जायसी आदि सूफी कवियों की पुस्तकों में योग और रसायन की बहुत-सी बातें बिखरी मिलती हैं। रहस्यवादी सूफियों के प्रेमतत्त्वों के साथ वेदान्त के ज्ञान मार्ग की कुछ बातें जोड़कर, जो निर्गुणपन्थ चला उसमें भी 'इड़ा, पिंगला, सुषमना नाड़ी' की बराबर चर्चा रही।

सूफियों ने हठयोगियों की जिन बातों को अपने मेल में देखा वे ये थीं–

1. रहस्य की प्रवृत्ति।
2. ईश्वर को केवल मन के भीतर समझना और ढूँढ़ना।
3. बाहरी पूजा और उपासना का त्याग।

ये तीनों बातें भारतीय भक्तिमार्ग से मेल खाने वाली नहीं थीं। जैसा कि ऊपर दिखा आए हैं, भारतीय भक्ति पद्धति 'रहस्य' की प्रवृत्ति को भक्ति की सच्ची भावना में बाधक समझती है। भारतीय परम्परा का भक्त अपने उपास्य को बाहर लोक के बीच प्रतिष्ठित करके देखता है, अपने हृदय के कोने में नहीं। वह ध्यान भी करता है तो जगत के बीच अपनी प्रत्यक्ष कला का प्रकाश करते हुए व्यक्त ईश्वर का। तुलसी का वन के बीच राम का दर्शन करना प्रसिद्ध है, हृदय के भीतर नहीं।

इसी प्रकार भक्ति भावना में लीन होने पर वह सब कुछ 'राममय' देखता है और अपने से बाहर सब की पूजा करना चाहता है। हठयोगियों की बातें भक्ति की सच्ची भावना में किस प्रकार बाधा पहुँचाने वाली थीं इस बात को लोकदर्शी

गोस्वामी जी की सूक्ष्म दृष्टि पहचान गई। उनके समय में गोरखपन्थी साधु योग की रहस्यमयी बातों का जो प्रचार कर रहे थे उसके कारण उन्हें जनता के हृदय से भक्ति भावना भागती दिखाई पड़ी-

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते, सो केलि ही छरो सो है।

'ईश्वर को मन के भीतर ढूँढ़ो' इस वाक्य ने भी पाखंड का बड़ा चौड़ा रास्ता खोला है। जो अपने को ज्ञानी प्रकट करना चाहते हैं वे प्राय: कहा करते हैं कि 'ईश्वर को अपने भीतर देखो।' गोस्वामी जी ललकार कर कहते हैं कि भीतर ही क्यों देखें, बाहर क्यों न देखें-

अन्तर्जामिहु तें बड़ बारहजामी हैं राम जो नाम लिए तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिए तें॥

गोस्वामी जी का पक्ष है यदि मनुष्य के छोटे से अन्त:करण के भीतर ईश्वर दिखाई भी पड़े तो भी अखिल विश्व के बीच अपनी विभूतियों से भासित होनेवाला ईश्वर उससे कहीं पूर्ण और कल्याणकारी है। हमारी बद्ध और संकुचित आत्मा केवल द्रष्टा हो सकती है, दृश्य नहीं, अत: यदि परमात्मा को, भगवान को, देखना है तो उन्हें व्यक्त जगत् के सम्बन्ध से देखना चाहिए। इस मध्यंस्थ: के बिना आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध व्यक्त ही नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि भारतीय भक्ति मार्ग व्यक्ति कल्याण और लोक कल्याण दोनों के लिए है। वह लोक या जगत् को छोड़कर नहीं चल सकता। भक्ति मार्ग का सिद्धान्त है भगवान को बाहर जगत् में देखना। 'मन के भीतर देखना' यह योग मार्ग का सिद्धान्त है, भक्ति मार्ग का नहीं। इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिए।

भक्ति रागात्मिका वृत्ति है, हृदय का एक भाव है। प्रेमभाव उसी स्वरूप और उसी गुण समूह पर टिक सकता है, जो दृश्य जगत् में हमें आकर्षित करता है। इसी जगत् के बीच भासित होता हुआ स्वरूप ही प्रेम या भक्ति का आलम्बन हो सकता है। इस जगत् से सर्वथा असम्बद्ध किसी अव्यक्त सत्ता से प्रेम करना मनोविज्ञान के अनुसार सर्वथा असम्भव है। भक्ति केवल ज्ञाता या द्रष्टा के रूप में ही ईश्वर की भावना लेकर सन्तुष्ट नहीं हो सकती। वह ज्ञातृपक्ष और ज्ञेयपक्ष दोनों को लेकर चलती है।

बौद्धों की महायान शाखा का एक और अवशिष्ट 'अलखिया सम्प्रदाय' के नाम से उड़ीसा तथा उत्तरी भारत के अनेक भागों में घूमता दिखाई पड़ता था।1 यह भी महायान शाखा के बौद्धों के समान अन्त:करण के मन, बुद्धि, विवेक,

हेतु और चैतन्य-ये पाँच भेद बतलाता था और शून्य का ध्यान करने को कहता था।

अब भी इस सम्प्रदाय के साधु दिखाई पड़ते हैं।

इस सम्प्रदाय का 'विष्णु गर्भपुराण' नामक ग्रन्थ उड़िया भाषा में है जिसका सम्पादन प्रो. आर्तवल्लभ महन्ती ने किया है। उन्होंने इसका रचनाकाल 1550 ई. के पहले स्थिर किया है। इस पुस्तक के अनुसार विश्व के चारों ओर 'अलख' ही का प्रकाश हो रहा है। अलख ही विष्णु है जिससे निराकार की उत्पत्ति हुई। सारी सृष्टि अलख के गर्भ में रहती है। अलख अज्ञेय है। चारों वेद उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। अलख से प्रादुर्भूत निराकार तुरीयावस्था में रहता है और उसी दशा में उससे ज्योति की उत्पत्ति होती है। यह सृष्टितत्त्वा बौद्धों की महायान शाखा का है। 'अलख' सम्प्रदाय के साधु अपने को बड़े भारी रहस्यदर्शी योगी और 'अलख' को लखने वाले प्रकट किया करते थे। ऐसा ही एक साधु गोस्वामी जी के सामने आकर 'अलख', 'अलख' करने लगा इस पर उन्होंने उसे इस प्रकार फटकारा-

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै रामनाम जपु नीच॥

हम अपने साथ जगत् का जो सम्बन्ध अनुभव करते हैं उसी के मूल में भगवान की सत्ता हमें देखनी चाहिए। 'जासों सब नातो फुरै' उसी को हमें पहचानना चाहिए। जगत के साथ हमारे जितने सम्बन्ध हैं सब राम के सम्बन्ध से हैं-

'नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।'

माता पिता जिस स्नेह से हमारा लालन पोषण करते हैं, भाई बन्धु, इष्ट मित्र जिस स्नेह से हमारा हित करते हैं, उसे राम ही का स्नेह समझना चाहिए।

जिन-जिन वृत्तियों से लोक की रक्षा और रंजन होता है उन सबका समाहार अपनी परमावस्था को पहुँचा हुआ जहाँ दिखाई पड़े, वहाँ भगवान की उतनी कला का पूर्ण प्रकाश समझकर जितनी से मनुष्य को प्रयोजन है-अनन्त पुरुषोत्तम को उतनी मर्यादा के भीतर देखकर जितनी से लोक का परिचालन होता है-सिर झुकाना मनुष्य होने का परिचय देना है, पूरी आदमियत का दावा करना है। इस व्यवहार क्षेत्रों से परे, नामरूप से परे जो ईश्वरत्व या ब्रह्मत्व है वह प्रेम या भक्ति का विषय नहीं, वह चिन्तन का विषय है। वह इस प्रकार लक्षित नहीं कि हमारे भावों का, हमारी मनोवृत्तियों का परम लक्ष्य हो सके। अतः अलक्ष्य का बहाना

करके जितना लक्ष्य है उसकी ओर भी ध्यान न देना धर्म से भागना है। गोस्वामी जी पूरे लोकदर्शी थे। लोकधर्म पर आघात करनेवाली जिन बातों का प्रचार उनके समय में दिखाई पड़ा उनकी सूक्ष्म दृष्टि उन पर पूर्ण रूप से पड़ी। कबीर आदि द्वारा परवर्तित निर्गुण पन्थ की लोकधर्म से विमुख करनेवाली वाणी का किस खरेपन के साथ उन्होंने विरोध किया इसका वर्णन 'लोकधर्म' के अन्तर्गत किया जाएगा।

भक्ति में बड़ी भारी शर्त है निष्कामता की। सच्ची भक्ति में लेन-देन का भाव नहीं होता। भक्ति के बदले में उत्तम गति मिलेगी, इस भावना को लेकर भक्ति हो ही नहीं सकती। भक्त के लिए भक्ति का आनन्द ही उसका फल है। वह शक्ति, सौन्दर्य और शील के अनन्त समुद्र के तट पर खड़ा होकर लहरें लेने में ही जीवन का परम फल मानता है। तुलसी इसी प्रकार के भक्त थे। कहते हैं कि वे एक बार वृन्दावन गए थे। वहाँ किसी कृष्णोपासक ने उन्हें छेड़कर कहा-'आपके राम तो बारह कला के अवतार हैं। आप श्रीकृष्ण की भक्ति क्यों नहीं करते जो सोलह कला के अवतार हैं?' गोस्वामी जी बड़े भोलेपन के साथ बोले-'हमारे राम अवतार भी हैं, यह हमें आज मालूम हुआ।' राम विष्णु के अवतार हैं इससे उत्तम फल या उत्तम गति दे सकते हैं, बुद्धि के इस निर्णय पर तुलसी राम से भक्ति करने लगे हों, यह बात नहीं है। राम तुलसी को अच्छे लगते हैं, उनके प्रेम का यदि कोई कारण है तो यही है। इसी भाव को उन्होंने इस दोहे में व्यंजित किया है-

जौ जगदीस तौ अति भलो, जौ महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरन अनुराग॥

तुलसी को राम का लोकरंजक रूप वैसा ही प्रिय लगता है जैसा चातक को मेघ का लोक सुखदायी रूप।

अब तक जो कुछ कहा गया है उससे यह सिद्ध है कि शुद्ध भारतीय भक्ति मार्ग का 'रहस्यवाद' से कोई सम्बन्ध नहीं। तुलसी पूर्ण रूप में इसी भारतीय भक्ति मार्ग के अनुयायी थे, अतः उनकी रचना को रहस्यवाद कहना हिन्दुस्तान को अरब या विलायत कहना है। कृष्णभक्ति शाखा का स्वरूप आगे चलकर अवश्य ऐसा हुआ जिसमें कहीं-कहीं रहस्यवाद की गुंजाइश हुई। अपने मूल रूप में भागवत सम्प्रदाय भी विशुद्ध रहा। श्रीकृष्ण का लोक-रक्षक और लोकरंजक रूप गीता में और भागवत पुराण में स्फुरित है। पर धीरे-धीरे वह स्वरूप आवृत्त होता गया और प्रेम का आलम्बन मधुर रूप ही शेष रह गया। वल्लभाचार्य जी

ने स्पष्ट शब्दों में उनका लोक-संग्रही रूप हटाया। उन्होंने लोक और वेद दोनों की मर्यादा का अतिक्रमण अपने सम्प्रदाय में आवश्यक ठहराया। लोक को परे फेंकने से कृष्णभक्ति व्यक्तिगत एकान्त प्रेमसाधना के रूप में ही रह गई। इतना होने पर भी सूरदास, नन्ददास आदि महाकवियों ने कृष्ण को इसी जगत के बीच वृन्दावन में रखकर देखा। उन्होंने रहस्यवाद का रंग अपनी कविता पर नहीं चढ़ाया।

मुसलमानी अमलदारी में सूफी पीरों और फकीरों का पूरा दौरदौरा रहा। लोक-संग्रह का भाव लिए रहने के कारण रामभक्ति शाखा पर तो उनका असर न पड़ा। पर, जैसा कि कह आए हैं, कृष्णभक्ति शाखा लोक को परे फेंककर व्यक्तिगत एकान्त साधना का रंग पकड़ चुकी थी। इससे उसके कई प्रसिद्ध भक्तों पर सूफियों का पूरा प्रभाव पड़ा। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट लक्षित होती हैं। जैसे सूफी कव्वाल गाते गाते 'हाल' की दशा में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु की मंडली भी नाचते-नाचते मूर्च्छित हो जाती थी। यह मुर्च्छा रहस्य संक्रमण का एक लक्षण है। इसी प्रकार मीराबाई भी 'लोकलाज खोकर' अपने प्रियतम कृष्ण के प्रेम में मतवाली और विरह में व्याकुल रहा करती थी। नागरीदास जी भी इश्क का प्याला पीकर इसी प्रकार झूमा करते थे। यहीं तक नहीं, माधुर्य भाव की उपासना लेकर कई प्रकार के सखी सम्प्रदाय भी चले जिनमें समय समय पर प्रियतम के साथ संयोग हुआ करता है। एक कृष्णोपासक सम्प्रदाय स्वामी प्राणनाथ जी ने चलाया जो न तो द्वारका, वृन्दावन आदि तीर्थों को कोई महत्त्व देता है और न मन्दिरों में श्रीकृष्ण की मूर्तियों का दर्शन करने जाता है। वह इस वृन्दावन और इसमें विहार करनेवाले कृष्ण को गोलोक की नित्यलीला की एक छाया मात्र मानता है।

जिस प्रकार मद, प्याला, मूर्च्छा और उन्माद सूफी रहस्यवादियों का एक लक्षण है उसी प्रकार प्रियतम ईश्वर के विरह की बहुत बढ़ी-चढ़ी भाषा में व्यंजना करना भी सूफी कवियों की एक रूढ़ी है। यह रूढ़ी भारतीय भक्त कवियों के विनय में न पाई जाएगी। भारतीय भक्त तो अपनी व्यक्तिगत सत्ता के बाहर सर्वत्र भगवान का नित्य लीलाक्षेत्रों देखता है। उसके लिए विरह कैसा ?

अपनी भक्ति पद्धति के भीतर गोस्वामी जी ने किस प्रकार शील और सदाचार को भी एक आवश्यक अंग के रूप में लिया है, यह बात 'शीलसाधना और भक्ति' के अन्तर्गत दिखाई जाएगी।

4

तुलसीदास की समन्वय भावना

समन्वय भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण विशेषता है, समय-समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ। परन्तु वे घुल मिलकर एक हो गई। समन्वय को आधार बनाने वाले लोकनायक तुलसी ने अपने समय की जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और 'रामचरितमानस' के रूप में समन्वय का अद्‌भुत आदर्श प्रस्तुत किया। तुलसी सही अर्थों में सच्चे सूक्ष्मद्रष्टा थे और उन्होंने बाल्यकाल से ही जीवन की विषम स्थितियों को देखा और भोगा था इसलिये वह व्यक्तिगत स्तर पर वैषम्य की पीड़ा से भली-भाँति परिचित थे। उनकी अन्तर्भेदी दृष्टि समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, सम्प्रदाय और यहाँ तक कि साहित्य में व्याप्त वैषम्य, असामनता, अलगाव, विछिन्नता, द्वेष और स्वार्थपरता की जड़ों को गहराई से नाप चुकी थी और उनके भीतर छिपी एक सर्जक की संवेदनशीलता यह भाँप चुकी थी कि वैषम्य और विछिन्नता के उस युग में लोकमंगल केवल सामंजस्य और समन्वय के लेप से ही संभव था। समन्वय से ही उन गहरी खाइयों को पाटा जा सकता था, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग, तुच्छ और अस्पृश्य बना रही थी। समन्वय से ही राजनीति को समदर्शी और शासन को लोक कल्याणकारी बनाया जा सकता था। फलतः तुलसी राम-भक्ति की नौका के सहारे समन्वय का संदेश देने निकल पड़े। लेकिन उनके संबंध में यह ध्यान रहे कि वह समन्वय के कवि है, समझौते के नहीं। 'डॉ. दुर्गाप्रसाद' भी यही मानते है।

'तुलसी ने एक हद तक समन्वय का मार्ग अपनाया है, लेकिन 'समन्वय' का ही 'समझौते' का नहीं। उन्हें जहाँ कहीं और जिस किसी भी रूप में लोक-जीवन का अमंगल करने वाली प्रवृति दिखाई दी है, उसका उन्होंने डटकर विरोध भी किया है, वहाँ वह थोड़ा भी नहीं चूके है।'

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' भी तुलसी को लोकनायक की संज्ञा देते है- इसी समनवय की विशेषता के कारण इसलिये वह तुलसी के काव्य में समन्वय की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहते है-

'लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएं, जातियाँ, आचार, निष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित है। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, ?और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय है। रामचरितमानस शुरू से अंत तक समन्वय-काव्य है।'

तुलसीदास एक ऐसे मनीषी, चिंतक, भक्त और जन कवि है, जिन्होंने अपने राम की पूंजी के बल पर तत्कालीन परिवेशगत समस्याओं का निराकरण किया। जैसे तुलसीयुगीन समाज में जाति-पाँति और अस्पृश्यता का बोलबाला था। उच्च वर्ण के व्यक्ति निम्न-वर्ण के व्यक्तियों को हेय दृष्टि से देखते थे। शूद्र वर्ण के लोग सभी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक यहाँ तक कि शैक्षिक अधिकारों से भी वंचित थे। ऐसे में तुलसी राम और उनकी भक्ति के द्वारा उन तमाम सामाजिक विषमताओं को दूर कर सबके लिये एक ऐसा मंच निर्मित करते है जहाँ अपने-पराए का भेदभाव ही मिट जाता है, जैसे उन्होंने रामचरितमानस में ब्राह्मण कुलोत्पन्न गुरु वशिष्ठ को शूद्रकुल में उत्पन्न निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर ब्राह्मण एवं शुद्र के मध्य समन्वय का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार राम और निषादराज तथा भरत और निषादराज की भेंट भी समन्वय का उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत करती है-

'करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सब भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ॥'

समन्वय की विचारधारा को सशक्त बनाने के लिए तुलसी ने अपने युग, परिस्थितियों का गंभीर अध्ययन और विवेचन किया होगा,तभी तो जो धर्म के नाम पर अनेक सम्प्रदायों में आडम्बर, अनाचार, जटिलता, पुरोहितवाद जैसी

कुरीतियाँ पनप रही थी वहाँ भी तुलसी ने इस विषमता को समाप्त करने के लिये समन्वय का मार्ग अपनाया। उन्होंने शिव के मुख से 'सोइ सैम इष्टदेव रघुनीरा सेवत जाति सदा मुनिधीरा ' कहलवाकर शिव को राम का उपासक घोषित किया तो राम के मुख से-

'संकर प्रिय मन द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास।।'

कहलवाकर राम को शिव का अनन्य भक्त घोषित किया। यहाँ तक कि तुलसी ने सेतु-निर्माण के समय भी राम से शिव की आराधना करवाकर समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने 'हरि हर पद रति मति न कुतरकी' कहकर शिव और विष्णु में एकत्व की स्थापना की।

शैव ओर वैष्णव सम्प्रदायों के समान उस युग में वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों में भी पारस्परिक वैमनस्य पनप चुका था। वैष्णव विष्णु के उपासक थे और शाक्त शक्ति के तथा ये दोनों भी निरन्तर संघर्षरत रहते थे। तुलसी ने इस संघर्ष को समाप्त करने के लिए तथा उक्त दोनों सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये सीता को शक्तिस्वररूपा बताया और उन्हें ब्रह्म की शक्ति कहते हुए 'उद्भावस्थिति संहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी ' कहकर शक्ति की उपासना की।

तुलसी की धार्मिक समन्वय की दृष्टि हमें सगुण और निर्गुण भक्ति धाराओं के समन्वय में भी देखने को मिलती है। तुलसी के अवतरण से पहले ही भक्ति मार्ग सगुण और निर्गुण भक्तिधाराओं में विभक्त हो चुका था तथा इनके समर्थकों के बीच निरंतर आपसी संघर्ष चलता रहता था। इस द्वेष से प्रभावित होकर सूरदास ने 'भ्रमरगीत' में निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन किया था। तुलसीदास इन विषमताओं को समाप्त करने के लिए संकल्पित थे, इसलिये उन्होंने सगुण ओर निर्गुण भक्तिधाराओं के बीच भी समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने आराध्य श्रीराम को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में देखा तथा उपासना की।

इस प्रकार राजा का प्रजा के प्रति जो दृष्टिकोण था, उसे तुलसी ने परिवर्तित काट दिया। उन्होंने दोनों के कर्त्तव्यों का निर्धारण करके समन्वय स्थापित किया। इसी प्रकार उन्होंने श्रीराम के परिवार के माध्यम से पारिवारिक समन्वय का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने पिता और पुत्र, पति और पत्नी, सास और पुत्रवधु, भाई-भाई, स्वामी ओर सेवक तथा पत्नी और सपत्नी

के मध्य समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। तुलसी के राम जितने पितृभक्त थे, उतने ही मातृभक्त भी थे तथा माता-पिता भी राम के प्रति वैसी ही भक्ति रखते थे। इसी प्रकार वधुएँ जितना सम्मान अपनी सासों का करती थी, उतना ही स्नेह उन्हें प्रतिदान स्वरूप प्राप्त भी होता था।

तुलसीदास जी ने अपने युग की राजनीतिक विशृंखलता को गहराई से अनुभव किया था। उन्होंने महसूस किया कि राजा संकीर्ण विचारधारा से युक्त और आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं। प्रजा के कल्याण की ओर उनका तनिक भी ध्यान नहीं है। राजा और प्रजा के बीच गहरी खाई बनती जा रही है जबकि राजा और प्रजा से कही अधिक श्रेष्ठ, उन्नत और महान समझा जाता था वह ईश्वर का प्रतिनिधि भी था। ऐसे में तुलसी ने बड़ी ही निपुणता के साथ उन अशिक्षित, अयोग्य राजाओं की आलोचना करते हुए लिखा है-

'गोंड़ गँवार नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद, कलि, केवल दंड कराल॥'

तुलसी ने यहाँ तक कहा कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी होती है वह राजा निश्चित रूप से नरक का अधिकारी होता है-

'जासु राज प्रिय राजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥'

दार्शनिक मत-मतान्तरों के मध्य व्याप्त द्वेष को समाप्त करने के लिए तुलसी ने इनके मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। उन्हीने द्वैत-अद्वैत, विद्या-अविद्या, माया और प्रकृति, जगतसत्य और असत्य, जीव का भेद अभेद, भाग्य एवं पुरुषार्थ तथा जीवन मुक्ति एवं विदेह मुक्ति जैसी दार्शनिक विचारधाराओं के बीच समन्वय स्थापित किया, अतः उस समय धर्म की आड़ में ही सामाजिक शोषण और सामाजिक सुधार होता था। तुलसी के दार्शनिक समन्वय को स्पष्ट करते हुए शिवदान सिंह चौहान कहते है-

'तुलसीदास के दार्शनिक समन्वय को देखते हुए यह नहीं भूल जाना चाहिये कि तुलसी लोकमर्यादा, वर्ण-व्यवस्था, सदाचार-व्यवस्था और श्रुति-सम्मत होने का ध्यान सदा रखते है। चाहे वह राम की भक्ति का प्रतिपादन करे , चाहे अद्वैतवाद का, चाहे माया का निरुपण करे या जीवन का विवेचन, चाहे शिव की वंदना करे या राम की, किन्तु वह अपनी इन बातों को किसी न किसी रूप में याद रखते हैं इसलिए तुलसी के समकालीन परिवेश में मुक्ति-प्राप्ति के दो मार्ग प्रचलित थे- ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग। ज्ञान मार्ग के समर्थक ज्ञान को मुक्ति

प्राप्त करने का उत्कृष्ट साधन मानते थे और भक्ति मार्ग के समर्थक इस दृष्टि से भक्ति को अधिक महत्त्व प्रदान करते थे। दोनो में अपने-अपने मत की उत्कृष्टता को लेकर पर्याप्त विवाद चलता रहता था। तुलसी ने अपने साहित्य के माध्यम से इस विवाद को समाप्त करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने अपने काव्य में जहाँ एक और ज्ञान को सृष्टि का सर्वाधिक दुर्लभ तत्त्व घोषित किया- 'हरि को भजे सो हरि को होई' और 'सियाराममय सब जग जानी' की समता पर आधारित भक्ति का वर्णन करते हुए भी शूद्र और ब्राह्मण के भेद को स्वीकार करते है।'

वही दूसरी ओर उन्होंने भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है, क्योंकि ये दोनों ही सांसारिक क्लेशों का नाश करने वाले है, कहकर भक्ति और ज्ञान में अभेद स्थापित किया-

'कहहि सन्त मुनि बेद पुराना।
नहि कुछ दुर्लभ ग्यान समाना।।'
'भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा।
उभय हरहि भव संभव खेदा।।'

कहकर ज्ञान की श्रेष्ठता का भी प्रतिपादन किया है क्योंकि ज्ञान से ही चित्त रूपी दीपक प्रज्ज्वलित होता है। इस प्रकार तुलसी ने भक्ति ज्ञान के मध्य अद्‌भुत समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। यद्यपि तुलसी ने 'ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका' तथा 'ग्यान का पंथ कृपान की धारा' कहकर जनमानस को ज्ञानमार्ग की कठिनाइयों से भी अवगत कराने का प्रयास किया तथा 'भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानी' कहकर भक्ति को ज्ञान की उपेक्षा अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया। परंतु एक अन्य स्थान पर 'रामचरितमानस' में -

'जोग अगिनि करि प्रकट तब कर्म सुभासुभ लाइ,
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।'

तुलसीदास की समन्वयकारिणी प्रतिभा से साहित्य भी अछूता नहीं रहा। उन्होंने अपनी साहित्य-साधना किसी एक प्रचलित शैली में नहीं की, बल्कि उस समय प्रचलित सभी काव्य-शैलियों को अपनाकर साहित्यिक समन्वय का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रबन्ध, मुक्तक और गीति आदि सभी काव्य शैलियों को अपनाया। उनका 'रामचरितमानस' यदि श्रेष्ठ महाकाव्य है तो 'विनय पत्रिका' एक श्रेष्ठ मुक्तक रचना है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित ब्रज, अवधी ओर संस्कृत भाषाओं का समन्वय अपने काव्य में इतनी सुंदर शैली में किया है

कि वह न तो उनकी कृतियों के प्रवाह में बाधक बना और न भाषिक-शृंगार का घातक ही। अवधी में 'रामचरितमानस' उनकी साहित्यिक प्रतिभा की पराकाष्ठा है तो ब्रज में 'गीतावली' , 'दोहावली' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ है। रामचरितमानस में उन्होंने इतने रचनात्मक कौशल के साथ संस्कृत और अवधी भाषाओं में सामंजस्य स्थापित किया है कि देखते ही बनता है-

'जय राम रमा रामरमनं समनं।
भवताप भयाकुल पाहि जनं।।
सरनागत मागत पाहि प्रभो।।
अवधेस सुरेस रमेस विभो।'

उनके काव्य में जहाँ एक ओर भाषा का साहित्यिक सौंदर्य दृष्टिगत होता है, वही दूसरी ओर जनभाषा का भी अत्यंत सरस रूप दिखाई देता है। तुलसु पूर्णतया समन्वयवादी थे इसलिये उन्होंने अपने समय की तथा पूर्व प्रचलित सभज काव्य पद्धतियों को राममय करने का सफल प्रयास किया। सूफियों की दोहा-चौपाई पद्धति, चन्द के छप्पय और तोमर आदि, कबीर के दोहे और पद, रहीम के बरवै, गंग आदि की कवित्त-सवैया पद्धति एवं मंगल काव्यों की पद्धति को ही नही, वरन् जनता में प्रचलित सोहर, नरछू, गीत आदि तक को उन्होंने राम काव्यमय कर दिया। इस प्रकार उन्होंने काव्य की प्रबंध एवं मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया। उन्होंने तत्कालीन कृष्णकाव्य की ब्रजभाषा और प्रेम काव्यो की अवधी भाषा दोनों का प्रयोग करके समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

निष्कर्षत: तुलसी ने तत्कालीन संस्कृतियों, जातियों, धर्मावलंबियों के बीच समन्वय स्थापित करके दिशाहीन समाज को नई दिशा प्रदान की। समन्वय का यह भाव उनकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में भी झलकता है कवि की भाषा की सहजता, सरलता और उत्कट सम्प्रेषणीयता मानव मूल्यों को जोड़ती है। तुलसी के काव्य में संस्कृत, अवधी, ब्रजभाषा आदि भाषाओ का सुंदर सामंजस्य मिलता है। लोक ब्रह्म तुलसी ने भारतीय जनता की नस-नस को पहचान कर ही 'रामचरितमानस' के द्वारा समन्वयवाद का अद्‌भुत आदर्श प्रस्तुत किया। वैसे तो हमारी भारतीय संस्कृति में सब्र और समन्वय का भाव पहले भी था और आज भी है, किन्तु आज भोग की प्रवृति प्रधान हो रही है। सामाजिक व्यवस्था के तार भी छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। विश्व स्तर पर आतंकवाद चुनौती बन चुका है। इस प्रकार की विषम परिस्थिति में तुलसी की लोकपरक दृष्टि एवं समन्वयवादी

विचारधारा ही मानवजाति को मानसिक एवं आत्मिक शान्ति प्रदान कर सकती है।

तुलसीदास के काव्य में समन्वय भावना

हिन्दी साहित्य के स्वर्ण युग के एक महान भक्त, प्रबुद्ध कवि एवं तत्त्व दृष्टा दार्शनिक महाकवि तुलसीदास ने अपने साहित्य के माध्यम से समन्वय की जो विराट साधना की है वो आज तक भारतीय जनमानस को प्रभावित किए हुए है। इसका कारण एक ओर उनकी सुन्दर काव्य शक्ति है तो दूसरी ओर उनके काव्य का धार्मिक स्वरूप भी है। इनका काव्य एक कवि की प्रेरणा ही नहीं बल्कि एक गहरे अध्ययन व चिंतन का वह जागरूक स्वरूप है जिसे कवि ने सोच-समझकर प्रस्तुत किया है और इसीलिए इनका समन्वय प्रयास इनकी लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण बन गया जिसका समर्थन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने करते हुए कहा है कि तुलसीदास के काव्य की सफलता का एक और रहस्य उनकी अपूर्व समन्वय शक्ति में है।

तुलसीदास का व्यक्तित्त्व ही अनेक विरोधाभासों का समुच्च्य रहा है। आर्थिक विपन्नता के कारण इन्हें दर-दर भटकना पड़ा तो लक्ष्मी ने इनकी चरण वन्दना भी की। समाज ने इनको अपमानित भी किया और सर्वोच्च सम्मान भी दिया। ये रति-रंग में आकंठ मग्न भी हुए और परम वियोगी संत भी। कहने का तात्पर्य यह है कि ये सच्चे अर्थों में संत थे। ऐसे संत जिसने भौतिक वैभव की क्षण-भंगुरता को पहचान लिया हो तथा आत्म-साक्षात्कार के उस सोपान पर पहुँच गया हो जहाँ मोहाकर्षण निरर्थक हो जाते हैं। इनकी दृष्टि में साम्प्रदायिक या भाषागत विवाद महत्त्वहीन अथवा पाखंडी मस्तिष्क की उपज थे और इसीलिए उन्होंने सदैव समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया।

'समन्वय' शब्द के सन्दर्भानुसार कई अर्थ हैं। व्यापक रूप में इसका अर्थ पारस्परिक संबंधों के निर्वाह से लगाया जाता है, लेकिन इसका एक विशिष्ट अर्थ में भी प्रयोग होता है और वह है- 'विरोधी प्रतीत होने वाली वस्तुओं, बातों या विचारों के विरोध को दूर करके उनमें सामंजस्य बिठाना।' तुलसी ने जिस समय साहित्य में प्रवेश किया उस समय के समाज, धर्म, राजनीति, भक्ति, साहित्य तथा लोगों के जीवन में अनेक परिस्थितियाँ परस्पर एक-दूसरे के विरोध में खड़े होकर जनमानस के जीवन को कठिन बना रही थीं। धर्म के क्षेत्र में शैव, वैष्णव व शाक्तों के रूप में विभिन्न सम्प्रदाय

दिन-प्रतिदिन कट्टरता की ओर बढ़ रहे थे। सगुणोपासक जहाँ निर्गुण मार्ग को नीरस बताकर उसकी निन्दा कर रहे थे तो निर्गुणपंथी भी सगुण भक्ति का विरोध कर रहे थे। जनता ज्ञान, कर्म और भक्ति के बीच चुनाव को लेकर असमंजस में थी। सभी वैष्णव आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्मवाद और माया के विरोधी थे तो सभी अद्वैतवादी माध्वाचार्य के द्वैतवाद के विपक्षी हो गए थे। राजा और प्रजा, वेदशास्त्र और व्यवहार के बीच का फासला निरन्तर बढता जा रहा था। पारिवारिक संबंधों में और वर्णाश्रम धर्म में वैमनस्य फैल रहा था। ऐसे समय में सभी साहित्यिक विद्वान अपने-अपने स्तर पर इन परिस्थितियों से जूझने का प्रयास कर रहे थे। जायसी ने फारसी मसनबी शैली में भारतीय प्रेम व लोक कथाओं को पिरोकर प्रेम का संदेश दिया तो कबीर ने भी हिन्दू-मुसलमान, उच्च-निम्न, अमीर-गरीब आदि भेदों का विरोध कर समाज में सामंजस्य बिठाने का प्रयास किया। परन्तु इस क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण व सराहनीय कार्य यदि किसी ने किया है तो वह गोस्वामी तुलसीदास ने। इन्होंने इन सभी विरोधों को बहुत अंशों में दूर कर अपनी समन्वयवादी दृष्टि का परिचय दिया और अपना एक निश्चित दार्शनिक मत स्थापित किया, जो मुख्यत: रामचरितमानस और विनय-पत्रिका में दृष्टिगत होता है। इसीलिए आचार्य द्विवेदी ने उनको बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक सिद्ध करते हुए कहा है- ''लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके।....तुलसीदास महात्मा बुद्ध के बाद भारत के सबसे बड़े लोकनायक थे।''

भक्तिकाल में ब्रह्म के सगुण व निर्गुण स्वरूप को लेकर जो विवाद चला उस पर भारतीय दर्शन में बहुत गम्भीर चिन्तन-मनन हुआ है। शंकराचार्य के अनुसार तत्त्व केवल एक है-'ब्रह्म'। ये ब्रह्म को स्वरूपत: निर्गुण व निराकार मानते हैं जबकि वल्लभाचार्य ने सगुण ब्रह्म को पारमार्थिक सत्य माना है, लेकिन तुलसीदास के अनुसार राम के दोनों रूप- निर्गुण और सगुण परमार्थत: सत्य हैं-

''अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाथ अनादि अनूपा।।''

तुलसीदास के अनुसार निर्गुण और सगुण में कोई तात्विक भेद नहीं है, केवल वेश का अन्तर है। दोनों स्वरूपों की अभेदता को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने दृष्टान्त भी दिया है-

''एक दारूगत देखिए एकू।
पावक जुग सम ब्रह्म विवेकू।।''

अर्थात् अग्नि के दो रूप हैं, एक अव्यक्त और एक व्यक्त। इसका दारूगत अव्यक्त रूप ही व्यक्त होने पर दृश्यमान हो जाता है। उसी प्रकार ईश्वर का भी जो निर्गुण व निराकार रूप है, जो दृष्टव्य नहीं है, वही प्रकट होने पर सगुण व साकार रूप में दिखाई देने लगता है–

''अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।''

और तुलसी के राम उसी निर्गुण ईश्वर का सगुण साकार व अवतरित रूप हैं। हालांकि तुलसीदास के संबंध में यह कहना भी गलत न होगा कि उन्होंने निर्गुण की अपेक्षा सगुण की उपासना को ही अधिक श्रेयस्कर माना है क्योंकि इनके मतानुसार निर्गुणोपासना केवल योगियों और ज्ञानियों तक ही सीमित है जबकि सगुणोपासना के अधिकारी सभी मनुष्य हैं। वह सुरसरि के समान सबका हित करने वाली है। लेकिन साथ ही जिस प्रकार इन्होंने अपने राम को एक ही साथ निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त, अंर्तयामी और बर्हियामी, गुणातीत और गुणाश्रय दिखाकर जो समन्वय भक्ति के क्षेत्र में दिखाया है वह अद्‌भुत है।

सगुण और निर्गुण का यह विवाद भक्ति के अतिरिक्त दार्शनिक क्षेत्र में भी था। तुलसी से पूर्व सभी विद्वान शंकराचार्य के अद्वैतवाद के विरोधी थे और इसीलिए सभी ने अलग-अलग विचारधाराओं की प्रतिष्ठा करते हुए अद्वैतवाद का खंडन किया। लेकिन तुलसी शंकर के ब्रह्मवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद दोनों से ही प्रभावित थे और यही नहीं इनके अलावा अन्य मतों से भी तुलसी ने विचार ग्रहण किए हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उपनिषदों और वेद सम्प्रदायों में, जो मान्यताएं समान रूप से पाई जाती हैं वे तुलसी को स्वीकार्य हैं परन्तु जहाँ अद्वैतवादियों और वैष्णव-वेदान्तियों में मतभेद है वहाँ उन्होंने समन्वयवादी दृष्टि से काम लिया है। उन्होंने 'विनय-पत्रिका' में अद्वैतवाद के अनुसार ही ब्रह्म को परम सत्य मानकर जगत को मिथ्या घोषित किया है और माया का स्वरूप भी अद्वैतवाद के अनुरूप ही ग्रहण किया है, लेकिन साथ ही विशिष्टाद्वैतवाद के अनुयायी होने के कारण जीव को ईश्वर का अंश मानकर उसे ईश्वर की ही भांति चेतन व अविनाशी भी माना है–

''ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।''

दार्शनिक क्षेत्र में प्रचलित तत्कालीन विचारधाराओं के साथ-साथ धार्मिक वैमनस्य को मिटाने का प्रयास तुलसी ने किया है। उस समय हिन्दू-मुस्लिम समस्या तो थी ही, हिन्दुओं में भी वैष्णव-शैव-शाक्त व स्मार्त आदि अनेक सम्प्रदाय थे और इनके भी अनेक उप-सम्प्रदाय थे जिनमें प्रायः संघर्ष होता रहता था। तुलसीदास की समन्वयवादी दृष्टि ने इस विवाद को समाप्त करने के अनथक प्रयास किए। मुख्य द्वन्द्व शैवों और वैष्णवों में था इसलिए तुलसी ने इस ओर भी ध्यान दिया। आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो- ''शैवों और वैष्णवों के बीच बढ़ते हुए विद्वेष को उन्होंने अपनी सामंजस्य व्यवस्था द्वारा बहुत कुछ रोका जिसके कारण उत्तरी भारत में वैसी भयंकर रूप न धारण कर सकी जैसा उसने दक्षिण में किया।''

इसी के चलते तुलसी ने राम की कथा शिव-मुख से कहलवाई। यही नहीं उन्होंने शिव के मुख से राम की प्रशंसा भी करवाई है वहीं दूसरी और शिव के ही अंश रूप हनुमान के द्वारा राम की भक्ति तुलसी ने करवाई है तो राम के द्वारा भी जगह-जगह शिव की भक्ति व आराधना करवाई है और राम के मुख से भी कहलवाया है-

''सिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर सपनेहुं मोहि नहिं पावा॥''

इस प्रकार तुलसी ने राम और शिव का परस्पर आत्मीय संबंध अपने साहित्य में निरुपित किया है। यद्यपि तुलसी मूलतः राम भक्त हैं, किन्तु उन्होंने कहीं भी राम को शिव से श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की है। दोनों को समान महत्त्व दिया है। लंका प्रयाण के समय सागर पर सेतु-बंधन के पश्चात् शिव की आराधना व शिवलिंग की स्थापना, 'रामचरितमानस' में राम कथा से पूर्व शिव-कथा, 'पार्वती-मंगल' की स्वतंत्र रचना और 'विनयपत्रिका' में 12 पदों में शिव की वंदना आदि इनके इसी प्रयास का हिस्सा है।

अपने इस समन्वय के प्रयास में तुलसी ने ज्ञान व भक्ति के अन्तर को भी पाटने का प्रयास किया है। वैष्णव आचार्य भक्ति को श्रेष्ठ मानकर चल रहे थे जबकि सांख्य योग में ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है, अतः तुलसी ने दोनों का समन्वय करते हुए विरति-विवेक संयुक्त भक्ति और ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ बतलाया है-

''श्रुति सम्मत हरि भगति पंथ संजुत विरति विवेक।''

यद्यपि तुलसी ने ज्ञान मार्ग को तलवार की धार के समान तीक्ष्ण और दुरुह भी बताया है, लेकिन साथ ही वे यह भी कहते हैं कि साध्य की दृष्टि से ज्ञान भक्ति में कोई अन्तर नहीं है–

''भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा॥''

इसलिए वे केवल भक्ति या कोरे ज्ञान की अपेक्षा भक्ति समन्वित ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं।

इस सबके अतिरिक्त तुलसीकालीन शासन व्यवस्था भी कई प्रकार के अन्तर्विरोधों से ग्रस्त हो चुकी थी। मुगल शासकों का असली उद्देश्य प्रजा–पालन और प्रजा–रंजन न होकर अपने साम्राज्य की स्थापना, निजी योग क्षेम और भोग विलास ही था और इसके लिए जनता की मेहनत की कमाई खर्च की जा रही थी इसलिए प्रजा भी असंतुष्ट होकर अपने मन मुताबिक रास्ते पर चलने के लिए बाध्य थी। अर्थात् राजा और प्रजा के बीच की दूरी निरन्तर बढ़ती जा रही थी, जो कि समाज के लिए बहुत खेदजनक बात थी। तुलसी ने 'रामचरितमानस' के उत्तर कांड में कलियुग वर्णन के माध्यम से इसी स्थिति का चित्रण किया है और मात्र चित्रण ही नहीं किया है बल्कि इस स्थिति को सुधारने का, इनके फासले को कम करने का प्रयास भी किया है। 'रामराज्य' के रूप में एक आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना अपने साहित्य के माध्यम से करते हुए तुलसी बताते हैं कि किसी भी देश और समाज की सुख–समृद्धि के लिए शासक व जनता का समन्वित प्रयास अपेक्षित है। उनके अनुसार एक शासक या कहें कि अच्छे शासक को मुख की भांति होना चाहिए, जो समस्त शरीर रूपी प्रजा का पालन–पोषण भली प्रकार से करे–

''मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कौ एक।
पालई पोषई सकल अंग तुलसी सहित विवेक॥''

साथ ही वे यह भी कहते हैं कि सिर्फ एक तरफा प्रयास ही इस सामंजस्य के लिए पर्याप्त नहीं है, प्रजा को भी अपना पूरा सहयोग देना चाहिए और इसीलिए उन्होंने एक अच्छे सेवक के कर्त्तव्य निर्धारित करते हुए उन्होंने कहा है–

''सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होय।''11

और इस प्रकार दोनों की सामंजस्यपूर्ण भागीदारी से ही जीवन सुचारू रूप से चल सकता है। यह समन्वय और सहयोग केवल राजा–प्रजा के लिए ही नहीं

बल्कि एक परिवार के लिए, उसके सदस्यों के लिए भी उतना ही आवश्यक है। और फिर पारिवारिक व नैतिक मूल्यों के पक्षधर मर्यादावादी तुलसी ने देखा कि समाज में पारिवारिक मान्यताएँ लगभग समाप्त होती जा रही हैं। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई में जो स्नेह संबंध होना चाहिए वह भी लगभग समाप्ति की ओर है। पिता और पुत्र दोनों स्वार्थ प्रेरित हैं। पति-पत्नी के संबंधों में आत्मीयता का दिखावा अधिक हो गया है। पुत्र शादी होते ही पत्नी का साथ पाकर माता-पिता को बेसहारा छोड़ देता है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन न होकर धनार्जन रह गया है। पुरुष 'परत्रिय लंपट कपट सयाने' हो गए हैं और स्त्रियाँ 'गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारी पर पुरुष अभागी।।' हो गई हैं। तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में जिसे विद्वानों ने 'व्यवहार का दर्पण' भी कहा है, जीवन मूल्यों की, नैतिक मूल्यों की व पारिवारिक मूल्यों की पुनः स्थापना का प्रयास किया है। पारिवारिक संबंधों का निर्वाह, सदस्यों का व्यवहार, एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य, निष्ठा, त्याग आदि को ध्यान में रखकर तुलसी ने राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण आदि के माध्यम से जो उदात्त चरित्र व आदर्श जीवन मानस में प्रस्तुत किया है वह इनकी समन्वय साधना का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। तुलसी के राम एक आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, पति व मित्र के रूप में पाठक के सामने आते हैं तो भरत व लक्ष्मण आदर्श भाईयों का दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं जिनके बीच सिंहासन पाने के लिद संघर्ष न होकर त्याग है, एक-दूसरे के लिए बलिदान की भावना है। हनुमान के द्वारा तुलसी आदर्श सेवक का चरित्र उपस्थित करते हैं तो सुग्रीव के द्वारा मित्रता का पाठ पाठक को सिखाते हैं। कहने का आशय यह है कि तुलसी ने अपने पात्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के पोषक जीवन मूल्यों को, उनके उदात्त स्वरूप को प्रस्तुत कर पारिवारिक स्तर पर समन्वय स्थापित करने की कोशिश की है जिसमें वे बहुत सफल भी हुए हैं।

तुलसी को साहित्य के क्षेत्र में भी काफी विरोधों का सामना करना पड़ा। उस समय भाषा के स्तर पर, काव्य रूप, शैली आदि कई स्तरों पर विविधता साहित्य में प्रवेश पा चुकी थी। भाषा की दृष्टि से काशी का वातावरण तुलसी के विरुद्ध था। पंडित लोग साहित्य के जनभाषा में लिखे जाने के विरुद्ध थे और तुलसी यह बात अच्छे से जानते थे कि जनभाषा को माध्यम बनाए बिना जनता का कल्याण संभव नहीं है इसलिए उन्होंने 'रामचरितमानस' के लिए अवधी को चुना और उसमें संस्कृत पदावली का प्रयोग भी किया। लोकभाषा और शास्त्रभाषा के इस समन्वय के साथ-साथ तुलसी ने लोकभाषा के रूप में प्रतिष्ठित दोनों

भाषाओं- ब्रज और अवधी का भी समानता से प्रयोग किया है। 'रामचरितमानस', 'बरवै रामायण', 'पार्वती-मंगल' 'जानकी-मंगल' और 'रामललानहछु' का माध्यम अवधी को बनाया है तो 'विनय-पत्रिका', 'कवितावली', 'दोहावली' व 'गीतावली' की रचना ब्रजभाषा में की है। रूपविधान की दृष्टि से भी प्रचलित तीनों रूपों का प्रयोग तुलसी ने किया है। प्रबंध रूप में 'मानस', निबंध रूप में 'रामललानहछु', 'पार्वती-मंगल' व 'जानकी-मंगल' तथा मुक्तक रूप में 'कवितावली' 'गीतावली', 'दोहावली' 'विनय-पत्रिका' आदि की रचना की है। शैलियों में भी तुलसी ने समन्वयवादी दृष्टि से काम लेते हुए सभी प्रचलित काव्य शैलियों में साहित्य सृजन किया है। दोहा-चौपाई शैली में 'रामचरितमानस' व 'वैराग्य-संदीपनी', पद शैली में 'विनय-पत्रिका', 'गीतावली', दोहा शैली में 'दोहावली', बरवै शैली में 'बरवै-रामायण' और 'कवित्त-सवैया शैली में 'कवितावली' की रचना तुलसी ने की है। इन्होंने प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली के सामंजस्य का निरन्तर ध्यान रखा है।

यद्यपि देखा जाए तो तुलसी दास वर्णाश्रम धर्म के निष्ठावान समर्थक हैं और न केवल उन्होंने अपनी विभिन्न कृतियों में कलियुग का वर्णन करते हुए उसके ह्रास पर खेद प्रकट किया है-

''बरन धर्म नहिं आश्रम चारी।
श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥''

बल्कि धर्म-निरुपण के प्रसंगों में उनके पालन पर भी बल दिया है। परन्तु उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं है। उनका लक्ष्य लोक कल्याण है और इसीलिए वे उच्चतम वर्ण ब्राह्मण और निम्नतम वर्ण शूद्र, दोनों को भक्ति का समान अधिकार दिया है फिर चाहे वह शबरी के बेर खानें का प्रसंग हो या केवट व निषाद के साथ राम, भरत व गुरु वशिष्ठ की भेंट का प्रसंग। क्षत्रिय श्रेष्ठ भरत व ब्राह्मण रत्न वशिष्ठ के द्वारा निषाद व केवट को प्रेमपूर्वक गले लगाने की बात तुलसी ने कही है-

''प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा॥''

कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म के समर्थक होकर व उसे समाज के सुचारू संचालन के लिए अनिवार्य मानते हुए भी मानव धर्म को ही अधिक महत्त्व देकर समाज के वर्णभेद के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

ईश्वर में पूरी आस्था और मनुष्य का पूरा सम्मान, ये दोनों दृष्टियाँ तुलसी में एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं-

''सिया-राममय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥''

उपरोक्त पंक्ति इनके इसी गहरे आत्मविश्वास की सूचक है। जहाँ ईश्वर और मनुष्य दोनों की एक साथ प्रतिष्ठा हो। 'सिया-राम' यदि उनकी भक्ति के लिए आश्रय स्थल हैं तो 'सब-जग' उनके रचना-कर्म के लिए। अनुभूति और अभिव्यक्ति का संश्लिष्ट रूप रचना में, वस्तुतः मानस में प्रत्याशित है वह ईश्वर और मनुष्य की इस एकरूपता में से निकलता है। एक स्तर पर ईश्वर और मनुष्य का समन्वित रूप तुलसी के राम-दशरथ पुत्र के साथ-साथ परब्रह्म परमात्मा विष्णु के अवतार हैं जिन्होंने धर्म की स्थापना, मानव रक्षा व असुर संहार के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया है-

''विप्र धेनु, सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।''

इन सबके अतिरिक्त सांस्कृतिक क्षेत्र में भी जहाँ-जहाँ तुलसी ने विरोध की झलक पाई है, वहाँ-वहाँ उन्होंने उसके शमन का प्रयास किया है। यद्यपि भारतीय संस्कृति अपने आप में समन्वय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। समय-समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आर्विभाव हुआ परन्तु वे घुल-मिलकर एक हो गई। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक व सौंदर्यमूलक विचारधाराओं का विकास हुआ, किन्तु उनकी परिणति संगम के रूप में हुई। किन्तु फिर भी कुछ विरोधी तत्त्व जो इसमें मौजूद थे उनके सामंजस्य का प्रयास तुलसी ने किया है जैसे कि राजन्य वर्ग, जनसामान्य और कोल-किरातों के जीवन, सांस्कृतिक भिन्नता को तुलसी ने वैसे ही चित्रित किया है, परन्तु राम के संबंध में इन्होंने इन सभी जीवन पद्धितियों को समन्वित रूप दिया है। और इससे भी महत्त्वपूर्ण बात है- हिन्दू संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति का समन्वय। तुलसीदास ने सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति के दृढ़निष्ठ अनुयायी होते हुए भी अपने दृष्टिकोण को उदार रखते हुए अपने काव्यधर्म का निर्वाह किया है। और इसीलिए राम की सेवा में प्रेषित 'विनय-पत्रिका' का विधान मुगल सम्राट के पास भेजी जाने वाली अर्जी की रीति पर किया है। साथ ही अरबी-फारसी की शब्दावली का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

इस प्रकार तुलसीदास ने अपने युग, परिस्थितियों की माँग व आवश्यकता को ध्यान में रखकर भक्ति, धर्म, भाषा, साहित्य, पारिवारिक जीवन, समाज

आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त विरोध व वैमनस्य को मिटाने और सामंजस्य स्थापित करने का जो प्रयास अपने साहित्य में किया है वह अतुलनीय है। और अपने इसी प्रयास के चलते भारतीय जनमानस के हृदय में, साहित्य में जो स्थान इन्होंने प्राप्त किया है, वह किसी भी अन्य साहित्यकार को अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है। अपने साहित्य के माध्यम से जिस विस्तृत व समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय तुलसी ने दिया है, उसके लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि स्वीकारते हुए कहा है- ''अपने दृष्टि विस्तार के कारण ही तुलसीदास जी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदय-मंदिर में पूर्ण प्रेम-प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं। भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी कवि को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को।''

लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना

महात्मा बुद्ध के बाद भारत के सबसे बड़े लोकनायक महात्मा तुलसीदास थे। वे युग्स्रष्टा के साथ-साथ युगदृष्टा भी थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–ष्लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके। क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।' लोकनायक उस महान व्यक्ति को कहा जा सकता है, जो समाज के मनोविज्ञान को समझकर प्राचीनता का संस्कार करके नवीन दृष्टिकोण से उसमें उचित सुधार करके जातिगत संस्कृति का उत्थान करता हो। उस युग के संदर्भ में यह कहना सर्वथा उचित होगा कि गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी की पहुँच मानव-हृदय के समस्त भावों एवं मानव-जीवन के समस्त व्यवहारों तक दिखाई देती है। उनके काव्य में युग-बोध पूर्णरूपेण मुखरित हुआ है।

'कलि मल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहुपंथ।।'

इस प्रकार तुलसी अपनी समन्वय-साधना के कारण उस युग के लोकनायक थे। तुलसीदास में वह प्रगतिशीलता विद्यमान थी, जिससे वे परिस्थितियों के अनुकूल नवीन दृष्टिकोण अपना कर प्राचीनता का संस्कार कर सकें। इतनी विषमताओं में साम्य स्थापित करने वाला पुरुष यदि लोकनायक नहीं होगा तो और कौन होगा?

भक्ति शील और सौन्दर्य के अवतार तुलसी के राम– तुलसी के राम सर्वशक्तिमान, सौन्दर्य की मूर्ति एवं शील के अवतार हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

'जब-जब होहि धरम के हानि। बाढ़हि असुर महा अभिमानी।
तब-तब धरि प्रभु मनुज सरीरा। हरहिं सकल सज्जन भव पीरा।।'

अर्थात् जब-जब समाज में विशृंखलता उत्पन्न होकर उसकी गति रुद्ध होती है तब-तब किसी एक महापुरुष का आविर्भाव होता है एवं गति-रुद्धता समाप्त होकर पारस्परिक सहयोग एवं समानता का वातावरण बनता है। रामराज्य भी इसी दिशा में एक कदम है। महाभारत के कृष्ण ने महाभारत का संचालन कर प्रतिकूल शक्तियों का उन्मूलन किया एवं ज्ञान, कर्म और शक्ति की एकता स्थापित की। कालातंर में कर्मकांड में हिंसा की प्रमुखता एवं ज्ञान और भक्ति का ह्रास होने पर बुद्ध अवतरित हुए। शांति, अहिंसा, मैत्री एवं प्रेम का विश्वव्यापी वातावरण तैयार हुआ जिसे साहित्य एवं इतिहास में बुद्धकाल के नाम से जाना गया। किंतु 8वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म भी कर्मकांड के जाल में फँसता चला गया, एवं दो शाखाओं में विभाजित हो गया वज्रयान और महायान। इन शाखाओं ने वाममार्गी साधना पर अधिक जोर दिया परिणामस्वरूप समाज में दुराचार एवं अव्यवस्था फैलने लगी। ठीक इसी समय जगदगुरु शंकराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने धार्मिक क्षेत्र में अद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। जिससे कर्मकांड में उलझी जनता एवं समाज को थोड़ी बहुत राहत मिली, बाद में गोस्वामी तुलसीदास ने आदर्शहीन एवं विलासिता में मग्न समाज का उत्थान करने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को मानस में उतारा। उन्होंने विशृंखल समाज को मर्यादा के बंधन में बाँधकर समन्वय की भावना उत्पन्न की और लोकधर्म का नवीन संस्कार किया।

राम का लोकसंग्रही रूप एवं धार्मिक समन्वय– तुलसी ने तत्कालीन बौद्ध सिद्धों एवं नाथ योगियों की चमत्कारपूर्ण साधना का खडंन करके राम के लोकसंग्रही स्वरूप की स्थापना की। राम के इस रूप में उन्होंने समन्वय की विराट चेष्टा की है। तत्कालीन समाज में शैवों, वैष्णवों और पुष्टिमार्गी तीनों में परस्पर विरोध था। इस कठिन समय में तुलसीदास ने वैष्णवों के धर्म को इतने व्यापक रूप में प्रस्तुत किया कि उसमें उक्त तीनों संप्रदायवादियों को एकरूपता का अनुभव हुआ। मानस में तुलसी के इस प्रयत्न की झाँकी देखी जा सकती है। राम कहते हैं-

'शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा।
संकर विमुख भगति चह मोरि। सो नारकीय मूढ़ मति थोरी॥'

इसी प्रकार उन्होंने वैष्णवों और शाक्त के सामंजस्य को भी दर्शाया है।

'नहिं तब आदि मध्य अवसाना।अमित प्रभाव बेद नहिं जाना।
भव-भव विभव पराभव कारिनि। विश्व विमोहनि स्दबस बिहारिनि॥'

पुष्टिमार्गी के 'अनुग्रह' का महत्त्व भी दर्शनीय है-

'सोइ जानइ जेहु देहु जनाई। जानत तुमहि होइ जाई॥
तुमरिहि कृपा तुमहिं रघुनंदन। जानहि भगत-भगत उर चंदन॥'

यह तो हो गई तुलसीदास की तत्कालीन धार्मिक वातावरण एवं उसमें समन्वय स्थापित करने की बात। इसका दूसरा पक्ष भी था उस युग में सगुण और निर्गुण उपासना का विरोध। जहाँ सगुण धर्म में आचार-विचारों का महत्त्व तथा भक्ति पर बल दिया जाता था वहीं दूसरी ओर निर्गुण संत साधकों ने धर्म को अत्यंत सस्ता बना दिया था। गाँव के कुँओं पर भी अद्वैतवाद की चर्चा होती थी, किंतु उनके ज्ञान की कोरी कथनी में भावगुढ़ता एवं चिंतन का अभाव था। तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति के विरोध को मिटाकर वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी।

'अगुनहिं सगुनहिं कछु भेदा। कहहिं संत पुरान बुधवेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सी होई॥'

ज्ञान भी मान्य है किंतु भक्ति की अवहेलना करके नहीं। ठीक इसी प्रकार भक्ति का भी ज्ञान से विरोध नहीं है। दोनों में केवल दृष्टिकोण का थोड़ा-सा अंतर है। राम कहते हैं-

'सुनि मुनि तोहि कहौं सहरोसा। भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा।
करौं सदा तिन्ही कै रखवारी। जिमि बालकहिं राख महतारी।
गह सिसु बच्छ अनल अहिधाई। तह राखै जननी अरू गाई।
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करे नहिं पाछिल बाता।
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।
जानहिं मोर बल निज बल नाहीं। दुह कहँ काम क्रोध रिपु आहीं।
यह विचारि पंडित मोहि भजहि। पाएहू ग्यान भगति नहिं तजहीं॥'

हृदय की स्वच्छता पर बल– तुलसीदास ने तत्कालीन धार्मिक संप्रदायवाद में बाह्याडंबर को प्रधानता न देते हुए हृदय की स्वच्छता पर बल दिया। तुलसी के राम ने संतों के जो लक्षण बताए हैं, उसके मूल में हृदय की स्वच्छता है।

'निर्मल मन सोइ जन मोहि पावा। मोहि न कपट-छ्ल-छिद्र सुहावा।।'

यह उस समय की धार्मिक स्थिति की माँग थी। तुलसीदास धार्मिक नेता ही नहीं अपितु महान समाज-सुधारक भी थे। रामराज्य की कल्पना के द्वारा उन्होंने उस समय की विद्यमान राजनीतिक गंदगी को दूर करने का यथासंभव प्रयास किया। मुसलमानों की राजनीति से हिंदू जाति आक्रांत थी। इन विषम परिस्थितियों में तुलसीदास ने खलविनाशक राम के शक्तिशाली जीवन द्वारा लोक शिक्षा का पाठ पढ़ाया। किस प्रकार अत्याचार का घड़ा भरने पर अंतोगत्वा फूटता ही है, तथा उसके विरुद्ध विद्रोह होता है और शांति की स्थापना होती है, यह मानस में देखने को मिलता है। तुलसी दास ने रामराज्य की आदर्श कल्पना कर समाज के समक्ष यह उदाहारण प्रस्तुत किया कि राजा का आदर्श प्रजा-पालन एवं दुष्टों का विनाश है।

समाज की मर्यादा का निरुपण–तुलसीदास ने समाज की मर्यादा का निरुपण लोक-जीवन के विविध संबंधों के माध्यम से दर्शाया है-'पिता-पुत्र', 'माता पुत्र', 'भाई-भाई', 'राजा-प्रजा', 'सास-बहू', 'पति-पत्नी' इत्यादि उन सभी की मर्यादा का वर्णन राम के महाकाव्यात्मक विस्तृत जीवन के अनेक प्रसंगों के माध्यम से किया। बदलाव युग की आवश्यकता एवं समय की माँग थी, पुरानी रूढ़ियों एवं सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोह के स्वर सुनाई पड़ रहे थे। तुलसीदास ने इस विद्रोह को भली-भाँति सुना, देखा और समझा। तुलसी ने मानस में कहा भी है-

'बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सव नरनारी।
द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासम। कोउ नाहिं मान निगम अनुसासन।।'

तुलसी का मानस स्वान्तः सुखाय होते हुए भी परजन-हिताय का संयोजक था। इसकी परिणति हमें संत के जीवन में देखने को मिलता है।

'मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।।'

तुलसीदास ने मानस में लोक और वेद, व्यवहार एवं शास्त्र का समन्वय प्रस्तुत किया है।

'चली सुगम कविता सरिता सो। राम विमल जस भरिता सो।
सरजू नाम सूमंगल मूला। जाकि वेद मत मंजुस कूला।।'

चित्रकूट में भरत-राम मिलन के अवसर पर होने वाली सभा में तुलसी ने भरत के वचनों के द्वारा साधुमत, लोकमत, राजनीति एवं वेदमत के मध्य सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया है। पं. रामचंन्द्र शुक्ल के अनुसार-'साधुमत का अनुसरण

व्यक्तिगत साधन है, लोकमत लोकशासन के लिए है। इन दोनों का सामंजस्य तुलसी की धर्म भावना के भीतर है।'

आध्यात्मिक क्षेत्र में समन्वय–उस युग में ईश्वर प्राप्ति के साधनों की बहुलता थी। विभिन्न दर्शनों के मक्कड़जाल में जनता उलझी हुई थी। तुलसीदास ने द्वैत-अद्वैत, द्वैताद्वैत-तीनों सिद्धान्तों को भ्रम मानते हुए कहा-

'तुलसी दास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।'

उनके ब्रह्म की मर्यादा विशिष्टाद्वैत से ही निर्मित है-

'सीया-राममय सब जग जानी। करहूँ प्रनाम जोरि जुग पानी'।।

काव्य शैली में समन्वय– तुलसी पूर्णतया समन्यवादी थे। उन्होंने काव्य की भाषा-शैली पर भी समन्वय की मोहर लगा दी। उन्होंने अपने समय की तथा पूर्व प्रचलित सभी काव्य-पद्धतियों को राममय करने का सफल प्रयास किया। यहाँ तक की सूफियों की दोहा-चौपाई पद्धति, चन्द के छप्पय और तोमर आदि, कबीर के दोहे और पद, रहीम के बरबै, गंग आदि की कवित्त-सवैया-पद्धति एवं मंगल-काव्यों की पद्धति को ही नहीं वरन् जनता प्रचलित सोहर, नहछू, गीत आदि तक को उन्होंने रामकाव्यमय कर दिया। इस प्रकार उन्होंने काव्य की प्रबंध एवं मुक्तक-दोनों शैलियों को अपनाया। उन्होंने तत्कालीन कृष्ण-काव्य की ब्रज-भाषा और प्रेम-काव्यों की अवधी भाषा-दोनों का प्रयोग कर अपने समन्वयकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया।

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा–लोककल्याण- तुलसी के काव्य में लोकसंग्रह की भावना अविच्छिन्न रूप से व्याप्त है। इसके जरिए तुलसी ने 'सत्यं शिवं सुन्दरं' को साकार किया है। तुलसीदास ने अपने काव्य का सृजन स्वान्तः सुखाय किया या परांत सुखाय, यह भी विचारणीय है। स्वयं तुलसीदास ने लिखा है कि मैंने रघुनाथ-गाथा 'स्वान्तः सुखाय' लिखा है। डॉ. श्यामसुन्दर के अनुसार-'तुलसीदास जी ने जो कुछ भी लिखा है,' 'स्वान्तः सुखाय' लिखा है। उपदेश देने की अभिलाषा से अथवा कवित्त्व-प्रदर्शन की कामना से जो कविता की जाती है उसमें आत्मा की प्रेरणा न होने के कारण स्थायित्व नहीं आता। तुलसी की रचना में उनके हृदय से सीधे निकले हुए भाव है, इसी कारण तुलसी का काव्य सर्वश्रेष्ठ है।' तुलसी ने रामकाव्य की रचना का उद्देश्य ही लोक कल्याण बताया है, यथा-

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई'

मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणी- विनायकौ।। हनुमान जी जब पर्वत लेकर लौटते है तो भगवान से कहते है।प्रभु आपने मुझे संजीवनी बूटी लेने नहीं भेजा था। आपने तो मुझे मेरी मूर्च्छा दूर करने के लिए भेजा था। 'सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू, हनुमान जी ने पवित्र नाम का स्मरण करके श्री राम जी को अपने वश में कर रखा है, प्रभु आज मेरा ये भ्रम टूट गया कि मैं ही सबसे बड़ा भक्त,राम नाम का जप करने वाला हूँ। भगवान बोले कैसे? हनुमान जी बोले - वास्तव में तो भरत जी संत है और उन्होंने ही राम नाम जपा है। आपको पता है जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगी तो मैं संजीवनी लेने गया पर जब मुझे भरत जी ने बाण मारा और मैं गिरा, तो भरत जी ने, न तो संजीवनी मंगाई, न वैद्य बुलाया। कितना भरोसा है उन्हें आपके नाम पर, आपको पता है उन्होंने क्या किया।

'जौ मोरे मन बच अरू काया,प्रीति राम पद कमल अमाया' तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला,जौ मो पर रघुपति अनुकूलासुनत बचन उठि बैठ कपीसा,कहि जय जयति कोसलाधीसा' यदि मन वचन और शरीर से श्री राम जी के चरण कमलों में मेरा निष्कपट प्रेम हो तो यदि रघुनाथ जी मुझ पर प्रसन्न हो तो यह वानर थकावट और पीड़ा से रहित हो जाए। यह वचन सुनते हुई मैं श्री राम, जय राम, जय-जय राम कहता हुआ उठ बैठा। मैं नाम तो लेता हूँ पर भरोसा भरत जी जैसा नहीं किया, वरना मैं संजीवनी लेने क्यों जाता, बस ऐसा ही हम करते हैं हम नाम तो भगवान का लेते हैं पर भरोसा नहीं करते, बुढ़ापे में बेटा ही सेवा करेगा, बेटे ने नहीं की तो क्या होगा? उस समय हम भूल जाते है कि जिस भगवान का नाम हम जप रहे हैं वे है न, पर हम भरोसा नहीं करते। बेटा सेवा करे न करे पर भरोसा हम उसी पर करते है। - दूसरी बात प्रभु! बाण लगते ही मैं गिरा, पर्वत नहीं गिरा, क्योंकि पर्वत तो आप उठाये हुए थे और मैं अभिमान कर रहा था कि मैं उठाये हुए हूँ।

मेरा दूसरा अभिमान टूट गया,इसी तरह हम भी यही सोच लेते है कि गृहस्थी के बोझ को मैं उठाये हुए हूँ, - फिर हनुमान जी कहते है -और एक बात प्रभु ! आपके तरकस में भी ऐसा बाण नहीं है जैसे बाण भरत जी के पास है।आपने सुबाहु मारीच को बाण से बहुत दूर गिरा दिया, आपका बाण तो आपसे दूर गिरा देता है, पर भरत जी का बाण तो आपके चरणों में ला देता है। मुझे बाण पर बैठाकर आपके पास भेज दिया। भगवान बोले - हनुमान जब

मैंने ताड़का को मारा और भी राक्षसों को मारा तो वे सब मरकर मुक्त होकर मेरे ही पास तो आये,इस पर हनुमान जी बोले प्रभु आपका बाण तो मारने के बाद सबको आपके पास लाता है पर भरत जी का बाण तो जिन्दा ही भगवान के पास ले आता है।भरत जी संत है और संत का बाण क्या है?संत का बाण है उसकी वाणीलेकिन हम करते क्या है,हम संत वाणी को समझते तो है पर सटकते नहीं है, और औषधि सटकने पर ही फायदा करती है।

5

राम काव्य परंपरा

1. वैसे ' राम ' शब्द का प्रयोग वेदों में कुछ स्थलों पर अवश्य हुआ है , परंतु यह राम दशरथ पुत्र राम है।
2. दक्षिण भारत के रामानुजाचार्य ने श्री वैष्णव संप्रदाय की स्थापना की थी। जिसमें नारायण के रूप में विष्णु की उपासना का विधान था।
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्वामी रामानंद को राम कथा काव्य का हिंदी कवि माना है।
4. जब मुगलों अथवा यवनों का आक्रमण भारत पर प्रारंभ हो गया यहां का धर्म त्राहि-त्राहि कर रही थी उसी समय रामानंद दक्षिण भारत की भक्ति को उत्तर भारत में लेकर आए थे।
5. "भक्ति उपजी द्रवदी लाए रामानंद"

राम काव्य की प्रवृत्तियाँ

1. यह सर्वमान्य है कि हिंदी में राम काव्य से अभिप्राय तुलसीदास से ही है। भक्त शिरोमणि कवि तुलसीदास का मूल प्रतिपाद्य आदर्श और मर्यादा रहा है।
2. समाज के प्रति पूर्ण निष्ठा का भाव इनमें सर्वत्र है इसी प्रकार समन्वय भावना , भक्ति भावना , अछूतोद्धार , सनातन मूल्यों की प्रतिष्ठा , आदि प्रवृतियों से इनकी कृति भरी हुई है।

राम का आर्दश

1. राम भक्ति काव्य में ईश्वर की कल्पना आदर्श मूल्य के रूप में की गई है।
2. राम को ईश्वर का अवतार स्वीकार किया गया , उसे मर्यादा पुरुषोत्तम कहकर संबोधित किया गया।
3. अत: वे रामभक्ति को जीवन दिशा मानकर श्रीराम को लोक रक्षक मानकर और विष्णु के अवतार दशरथ राम को देवाधिदेव मानकर सर्वस्व समर्पित कर बैठे।
   इनकी भक्ति भावना मुख्यत: दास्य भाव की है।

भक्ति भावना

1. भक्त कवियों की भक्ति भावना प्रमुख्य दास्य भाव की है।
2. सीता में माधुर्य भाव की भक्ति है तो सुग्रीव में साख्य भाव की तथा दशरथ और कौशल्या आदि में वात्सल्य भाव की।
3. तुलसी ने नवधा भक्ति के रूप में भक्ति के पारंपरिक भेदों के स्थान पर मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करके अपनी व्यापक संस्कृति का पक्ष रखकर भक्ति का परिचय दिया।
4. राम भक्ति शाखा के कवि में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ माना है। परंतु ज्ञान की भी उपेक्षा नहीं की गई है।

समन्वय भावना

1. रामकाव्य मूलत: इसी समन्वय भावना के कारण मानवतावादी माना जाता है।
2. व्यक्ति , परिवार और समाज का तथा भोग और त्याग का समन्वय करके संपूर्ण मानव जाति को तथा उसके चिंतन को एक ही धरातल पर प्रस्तुत कर सही अर्थों में मानवतावाद की स्थापना करने का प्रयास किया है।
3. स्वयं राम द्वारा सेतुबंध के शुभ अवसर पर शिवजी की उपासना कराई गई।
4. इस उदारता के कारण रामकाव्य भारतीय जनमानस का प्रिय बन गया है।

राम राज्य की संकल्पना

1. पंजाब में रामकथा का विकास यहां की सांस्कृतिक विरासत के रूप में जुड़ा हुआ है।

2. वस्तुतः यह कथा हमें रामराज्य का आदर्श रूप प्रदान करती है।
3. पारिवारिक जीवन के दृष्टिकोण से राम एक आदर्श मातृ-पितृ भक्त पुत्र, गुरु सेवा परायण शिष्य , एक पत्नीव्रती पति , अन्यतम स्नेह करने वाले तथा संरक्षक है।
4. राम काव्य में नारी के सतीत्व तथा पतिव्रत धर्म को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।
5. अरण्यकांड में सती अनुसूया, सीता को उपदेश देती है। 'नारी की सच्ची पहचान आपत्तिकाल में ही होती है, पति के रोगी, धनहीन , नेत्रहीन , बधिर, क्रोधी, दीन आदि अवस्था को प्राप्त होने पर उसका धर्म है कि तब भी वह उसका अपमान ना करें बल्कि धर्म अनुसार उसकी सेवा करें।'
6. अतिथि की पूजा, विनम्र भाव, चित्त कोमल , स्वाभिमानी, प्रसन्न होना, स्नेह भाव रखना, परोपकारी भाव आदि को लिया जा सकता है।
7. वस्तुतः संपूर्ण राम काव्य में परंपरा उक्त आदर्शों को प्रस्तुत करते हुए ऐसे समाज के निर्माण की कल्पना प्रस्तुत करती है जिसमें कोई छोटा-बड़ा नहीं होता आदि प्रस्तुत किया गया है।

सामाजिक दृष्टि

1. व्यक्तिक, पारिवारिक, वर्गीय, सामाजिक एवं राजनीतिक आदर्श इन कवियों का सम्मुख रहा है।
2. इनमें अछूतोंद्धार और नारी सम्मान विशेष है।

अछूतोंद्धार

1. भक्ति युगीन राम काव्य की प्रमुख विशेषता अछूतोंद्धार प्रवृत्ति है।
2. निर्गुण की उपासना करने वाले भक्तों संतों ने निम्न जातियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत और सक्रिय होने का संदेश दिया है।
3. निम्न वर्गों के अनेक आंदोलनकारी साधक ढोंगी और दंभी थे तथा ब्रह्म ज्ञानी होने का दावा करके अपना प्रभुत्व जमा रहे थे।
4. तुलसी के राम अपनी अछूतोंद्धार उद्धारक नीति की घोषणा करते हैं।
5. मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति पूर्णाशक्ति व्यक्त करते हुए कवि तुलसीदास जातिभेद की सीमा से परे विचार करते हैं।

6. पराधीन भारत की पीड़ा को समझने वाले कवि तुलसी ने नारी की पराधीनता की पीड़ा का तीखा एहसास करते हुए विवाह उपरांत पार्वती की विदाई को दर्शाया है।
7. तुलसीदास ने पार्वती, सीता, अनुसूया आदि के अतिरिक्त राक्षस परिवार की सुलोचना, मंदोदरी, त्रिजटा नामक आदर्श स्त्रियों की भी सृष्टि की है।

सांस्कृतिक पक्षधरता

1. रामकथा जनमानस की आत्मा है। इससे व्यक्ति, परिवार, वर्ग, समुदाय, समाज, शासन व्यवस्था सभी की आदर्श स्थिति का स्पष्टीकरण उपलब्ध है।
2. इसलिए राम काव्य सांस्कृतिक पक्षधरता को आत्मसात् किए हुए हैं।
3. भारतीय समाज में जब आदर्शों और मर्यादाओं की बात होती है तो राम के समाज का उदाहरण सामने रखा जाता है और राम राज्य की बात कही जाती है।
4. जब शासन व्यवस्था की बात होती है तो राम राज्य का उदाहरण सबके सामने रखा जाता है।

अभिव्यंजना कौशल

1. तुलसीदास एक आदर्श कवि हैं। तथागत चरित्र संदेशगत अभिव्यक्ति सौंदर्य और उत्कर्ष मानस में स्पष्ट है।
2. व्यक्ति और समाज के जीवन की परिस्थितियों और मनः स्थितियों के घात-प्रतिघात को इस ग्रंथ में उजागर किया गया है।
3. राम और कृष्ण भक्ति के काव्य पहली बार जन भाषा में लिखा गया है।
4. जैन कवियों ने अपने साहित्य अपभ्रंश में लिखे थे।
5. तुलसीदास ने अवधी भाषा में रामचरितमानस को लिखकर मानस की इस भाषा को ना समझने वाले भी बड़े आदर से सुनते अथवा वाचन करते हैं।

भक्ति काल की पूर्व पीठिका

पूर्वपीठिका सिद्ध, जैन, नाथ साहित्य

1. इस आंदोलन की पूर्वपीठिका सैंकड़ों वर्षों की सांस्कृतिक गतिविधियों को अपने अंदर समाहित करती है।

2. सिद्ध उनके साहित्य में देहवाद का महिमामंडन महा सुखवाद आदि से ओत-प्रोत है।
3. सिद्धों के महासुखवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ पंथ अस्तित्त्व में आया।
4. प्रमाणिक रूप से मिलने वाला साहित्य जैन साहित्य है।
5. इसके रचनाकार राजाश्रय प्राप्त थे।
6. भक्ति काव्य की पूर्वपीठिका में विद्यापति काफी महत्त्वपूर्ण है। विद्यापति की कीर्ति लता में सामाजिक राजनीतिक विषयों का प्रसंग चुना गया है।
7. निर्गुण परंपरा में जायसी और कबीर की गणना की जाती है।
8. सगुण भक्ति का दार्शनिक आधार रामानुजाचार्य ने तैयार किया।

कबीर

कबीर स्वभाव से फक्कड़ थे। हिंदू मुसलमान को एक बंधन में बांधने का प्रयास किया करते थे। रूढ़ियों पर प्रहार कर जाति-प्रथा पर भी चोट किया।

जायसी

1. जायसी मानव प्रेम को बैकुंठी मानते हैं , जायसी का प्रेम मृत्यु पर विजय पाने वाला प्रेम है।
2. जायसी का प्रेम व्यक्तिगत ना होकर संपूर्ण मानव जाति के लिए है।
3. निर्गुण सूफी परंपरा में पद्मावत का विशिष्ट स्थान है वह प्रेमाख्यान आधारित है।
4. अलौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना करते हैं।

सूरदास

1. सूरदास सगुण भक्ति थे वह कृष्ण के उपासक थे।
2. सूरदास भक्ति को मनुष्य की मुक्ति का साधन मानते थे।
3. कृष्ण के वात्सल्य अवस्था से लेकर युवावस्था तक सूर ने भक्ति की है।

तुलसीदास

1. तुलसी ने राम का सगुण रूप में उपासना कि उनकी भक्ति लोक रंजक से प्रेरित है।
2. तुलसी ने राम का आदर्श प्रस्तुत कर समन्वय की स्थापना की।

रीतिकालीन रीतिकाव्य

1. रीतिकालीन कवि सचेत रूप से कविता लिख रहे थे, जो उनके जीविकोपार्जन का साधन थी।
2. कुछ कवि साहित्य प्रेमी थे तो कुछ दरबार की शोभा बढ़ाते थे।
3. रीतिकालीन समाज नगरीय शासन था नगर के उपवनों में देशी-विदेशी पुष्पों की बहार थी।
4. कमलों के सुशोभित सरोवर में स्नान करती सुंदरियों के अनावृत्त सौंदर्य का वर्णन इन सुंदरियों की दिनचर्या का वर्णन आदि रीतिकालीन कवियों की विशेषता रही है।

काव्य धाराएँ

रीतिबद्ध

1. रीतिबद्ध कवि रीतिकाल की प्रवृतियों से बंधे हुए थे , वह दरबारी कवि हुआ करते थे।
2. अपने आश्रय दाताओं को प्रसन्न करने के लिए रचनाएं किया करते थे।
3. कुछ मुख्य कवि– मतिराम , चिंतामणि है।

रीतिसिद्ध

1. जिन कवियों ने शास्त्रीय नियमों में बंधकर रचनाएं कि वह रीतिसिद्ध कवि कहलाए।
2. प्रमुख कवि –बिहारी।

रीतिमुक्त

1. चली आ रही परिपाटी से मुक्त होकर जिन कवियों ने रचनाएं कि वह रीतिमुक्त कवि कहलाए।
2. प्रमुख कवि थे–धनानंद , बोधा , आलम , ठाकुर आदि।

केशव

केशव संस्कृत के आचार्य थे, अत: रीतिकाल में शास्त्रीय पद्धति का प्रयोग किया। केशव को कवि हृदय नहीं मिला , उनमें भावुकता का अभाव था।

भूषण

भूषण ने शिवाजी को अपना काव्य नायक बनाया , वह ऐतिहासिक पात्र है। भूषण ने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए शिवाजी को प्रस्तुत किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने–'हिंदू जाति का प्रतिनिधित्व कवि' माना। शिवाजी के छापामार युद्ध ने औरंगजेब को बहुत परेशान किया स्थान–स्थान पर शहजादियों व रानियों के भय का वर्णन मिलता है।

बिहारी

प्रेम हृदय का स्वाभाविक धर्म है। उन्होंने प्रेम को सर्वत्र पाया। नारी को प्रेम की प्रतिमूर्ति माना। बिहारी के यहां नायिका के नखशिख वर्णन से लेकर उसकी आंगिक चेष्टाओं और दशाओं के चित्र बिखरे पड़े हैं।

धनानंद

प्रेम की पीर को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। यह वियोगश्रृंगार के प्रधान कवि हैं। आचार्य शुक्ल ने साक्षात् रस मूर्ति कहा है उनकी कविता स्व प्रेमानुभूति है।

तुलसी नवधा भक्ति

तुलसीदास मूलत: एक भक्त हैं। उनका नाम राम बोला था .तथा उपनाम तुलसी था परंतु राम के भक्त अथवा दास होने के कारण वे तुलसीदास कहलाए।

शांडिल्य नारद–आदि भक्ति आचार्य ने भगवान के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहा है। तुलसीदास के अनुसार भी भक्ति प्रेम से होती है राम के प्रति प्रीति ही इनकी भक्ति है। ये भक्ति के मार्ग के प्रतिपादक वक्तित्त्व के दृष्टा और भक्ति रस के सिद्ध भक्ता थे। भक्ति के सभी पात्रों एवं भाव स्तरों का उन्होंने साक्षात्कार किया था। और भक्ति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई है। तुलसीदास प्रतिपादक भक्ति मार्ग का सर्वाधिक मौलिक वैशिष्ट्य की वह लोक अनुमोदित होते हुए भी सभी संबंध आधार पर प्रतिष्ठित हैं। राम की भक्ति कहने में सुगम है पर उसकी करनी अपार है। भक्ति की इस दुर्गमता का अनुमान उसी को हो सकता है जिस पर स्वयं भक्ति हो।

भक्ति की परिभाषा

भक्ति शब्द 'भज' से कर्तन प्रत्यय का योग करने पर बनता है कीर्तन प्रत्येक के भाव में प्रयोग करने पर भजन को भक्ति कहेंगे भक्ति शब्द साथ दे या प्रेमाभक्ति का द्योतक है।

तुलसी मूलत: भक्त हैं प्रक्रिया से अलग-अलग उनके काव्य में भक्ति और साधना का ऐसा मिश्रण है। यह कहना कठिन है कि हम भक्ति है या केवल काव्य–भक्ति भावना। जिस व्यक्तिगत ईश्वर की आवश्यकता थी इन्होने उसे दशरथ के राम में पा लिया था। उनके राम वही थे परंतु तुलसी ने अदम्य उत्साह से राम को विशिष्ट स्थान दिलाया। सारा मानस तुलसी के इस प्रयत्न का साक्षी है। इन्हीं दशरथि राम से तुलसी ने अपना संबंध जोड़ा। इसी भावना से प्रभावित होकर यह सत्य-असत्य दोनों की अभय अर्चना करते दिखाई देते। इनके लिए वह आत्म-समर्पण के लिए तत्पर हैं। उन्हें भगवान की उससे अनु कथा पर विश्वास है, जो भक्त के प्रयत्न की उपेक्षा नहीं करते और न हीं उस के अवगुण या दुर्गुण पर दृष्टि डालती है।

ये मोक्ष नहीं चाहते ,वह भक्ति ही चाहते हैं। इस भक्ति दान की आवश्यकता है। संसार के दुख-सुख के आघात से बचने के लिए जिनका कारण माया जन्म भ्रम है।

तुलसी माया के भ्रमजाल के उत्पन्न करने की शक्ति जानते हैं। यह भ्रम जो अभीदा माया के कारण जन्मा हुआ है। राम की प्रेरणा से ही अविद्या का नाश हो कर विद्या संभव है। मध्य युग में कथा श्रवण और कीर्तन का विशेष महत्त्व था। इससे पहले किसी साधनों पर इतना बल नहीं दिया गया। भक्त साधकों ने जहां एक और कथा श्रवण कीर्तन और नृत्य एवं निमित्य पूजन की सामूहिक विद्यानिकालीन माधुरी और अंत: साधना का साक्षात् रूप का चाक्षुक विकास भी किया गया। मानस में भगवान श्री कृष्ण के सौंदर्य का विशेष वर्णन है।

विशेषतया बालकांड और अयोध्याकांड में जिसमें उसके सगुण रूप का ध्यान किया गया। गुरु भक्ति को भी तुलसी ने महत्त्व दिया। उपासना और भक्ति और अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के लिए भक्ति भावना सर्वत्र विद्यमान है। विशेषकर अंत: साधना के लिए अनुभूति को समझने-समझाने का प्रश्न है। परंतु मध्य युग में गुरु को नारायण मान लिया गया है। इन्होंने सत्संग को ईश्वरों उन्मुख होने का प्रधान साधन माना है। मानस में स्थान-स्थान पर सत्संग की महिमा का वर्णन है।

भगवान के प्रति इन की भक्ति भावना केवल दो प्रकार से प्रकट हुई है। शांति दूसरा कृति एक इसी शांति और रास्ते भाव की प्रधानता उनकी रचनाओं में मिलती है। शील के कारण तुलसी और शौर्य से स्वयं तुलसी व्यक्तित्त्व को प्रकाशित करते हैं। वास्तव में ज्ञान और प्रेम यह दोनों ही भगवत शक्ति का साधन है। परंतु तुलसी भक्ति को ही विशेष महत्त्व देते हैं। राम भक्ति साधना का कोई एक निश्चित प्रकार नहीं है। तुलसी ने अनेक साधन करे हैं जिसमें भक्ति लोग और नवधाध्नवदं भक्ति प्रधान है।

महर्षि शांडिल्य "ईश्वर में प्रेम अनुराग ही भक्ति है"।

नारद- ईश्वर में अतिशय प्रेम रूपा ही भक्ति है।

तुलसी

भक्ति प्रेम से होती है। भक्ति दो प्रकार की है नवधा, वैधी भक्ति। महर्षि वाल्मीकि-जिन्होंने रामायण की रचना करके मानव समाज को जीवन का मूल मन्त्र दिया।

6

तुलसीदास भक्ति

तुलसीदास की रामकथा की रचना एक विचित्र संश्लेषण है। और एक ओर तो श्रीमद्भागवत पुराण की तरह इसमें एक संवाद के भीतर दूसरे संवाद, दूसरे संवाद के भीतर तीसरे संवाद और तीसरे संवाद के भीतर चौथे संवाद को संगुंफित किया गया है और दूसरी ओर यह दृश्य-रामलीला के प्रबंध के रूप में गठित की गई है, जिसमें कुछ अंश वाच्य हैं, कुछ अंश प्रत्यक्ष लीलायित होने के लिये यह प्रबंध काव्य हैं, जिसमें एक मुख्य वस्तु होती है, प्रतिनायक होता है- और अंत में रामचरित मानस में तीनों नहीं है। यह पुराण नहीं है क्योंकि पुराण में कवि सामने नहीं आता है- और यहाँ कवि आदि से अंत तक संबोधित करता रहता है। एक तरह से कवि बड़ी सजगता से सहयात्रा करता रहता है। पुराण में कविकर्म की चेतना भी नहीं रहती है- सृष्टि का एक मोहक वितान होता है और पुराने चरितों तथा वंशों के गुणगान होते हैं। पर रामचरितमानस का लक्ष्य सृष्टि का रहस्य समझना नहीं है, न ही नारायण की नरलीला का मर्म खोलना मात्र है। उनका लक्ष्य अपने जमाने के भीतर के अंधकार को दूर करना है, जिसके कारण उस मंगलमय रूप का साक्षात्कार नहीं हो पाता- आदमी सोच नहीं पाता कि केवल नर के भीतर नारायण नहीं है नारायण के भीतर भी एक नर का मन है, नर की पीड़ा है।

हिंदी काव्य-जगत में गोस्वामी तुलसीदास की उपस्थिति भक्ति, सामाजिक, सरोकार और दार्शनिक चिंतन का समावेश करते हुए भाषा और साहित्य की नई

ऊँचाइयों को रेखांकित करती है। विगत पाँच शताब्दियों में भारतीय समाज के एक व्यापक भाग में नारायण जन-जन का संबल बनी हुई है। संगीत के प्रयोगों में, मीडिया में, चित्रकला में और साहित्य के सुधी मर्मज्ञों में तुलसी को सुनने, गहने और समझने की चेष्टा लगातार बनी हुई है। रामकथा के निर्वचन में लगे आचार्य मानस में नित्य नए अर्थ-संदर्भ ढूँढ़ते रहते हैं। भारत के शहरों और गाँवों में आज मानस में नित्य नए अर्थ-संदर्भ ढूँढ़ते रहते हैं। भारत के शहरों और गाँवों में आज भी लाखों की संख्या में श्रोता तुलसी की रामायण का आह्वान करते नहीं थकते। तुलसी की रामकथा का आकर्षण भारत के बाहर रह गये भारतवासियों में भी बना हुआ है। रामायण एक धर्मग्रन्थ के रूप में भी प्रायः सभी हिंदुओं के घरों में विराजमान है। किसी काव्य ग्रन्थ की ऐसी बहुआयामी उपस्थिति बिरले ही होगी।

उपयुक्त सत्य बावजूद साहित्यकार जगत में तुलसीदास को लेकर अनेक पूर्वाग्रह प्रचलित रहे हैं। और उनके काव्य का आस्वादन विभिन्न वादों और विवादों के बीच होता रहा है। तुलसीदास में लोगों ने जो चाहा है, वह देखा है, उन्हें सराहा भी है और जी भर कोसा भी है। वे जीवनदायी माने गए हैं और पथ भ्रष्टक भी। अनेक साहित्यालोचक तुलसी में धार नहीं पाते और परंपरा के दुराग्रह का दोषी ठहरातें हैं। और इस पृष्ठभूमि में तुलसी का सम्यक् अनुशीलन और अवबोध एक जटिल चुनौती बन जाती है। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने इस चुनौती को स्वीकार किया और तुलसी के काव्य का मर्म उपस्थित करने का सतत् प्रयास किया। और अनेक लेखों और आख्यानों में उन्होंने तुलसी काव्य के शास्त्रीय सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक पक्षों को सरस संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। यह सामग्री अनेक स्थलों पर बिखरी पड़ी थी। प्रस्तुत ग्रंथ इस सामग्री को एकत्रित व्यवस्था कर प्रस्तुत करता है।

यह लघुकाय ग्रन्थ आम आलोचना ग्रन्थों से इस अर्थ में भिन्न है कि उनके पीछे एक भावक, पाठक और आस्वादक का मानस सक्रिय रहा है। मिश्र जी स्वाभावतः कवि-हृदय सर्जक थे और उनकी आलोचनाएँ मूलतः रचनात्मक विमर्श हैं, जो पाठक को अपने साथ चल पड़ने को विवश करती हैं। तुलसीदास परंपरा में कहां स्थिति है ? किन आयामों पर उनकी कविता का वितान तना है? किन जीवंत शाश्वत प्रश्नों को लेकर तुलसीदास रामकथा का आयोजन करते हैं? साहित्यिक उपलब्धियों की दृष्टि से तुलसीदास की क्या विशिष्टता हैं? तुलसीदास को समझाने में क्या कठिनाइयाँ है? कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो मिश्र जी

के सामने रहे हैं। इस संकलन में संकलित रचनाएं मिश्र जी की दृष्टि को प्रस्तुत करती है और विस्तृत फलक पर विमर्श का न्योता देती हैं। रचनाओं में कुछ अनेक बार उभरकर आए हैं, पर उनके प्रसंग भिन्न हैं या फिर उनकी रचना भिन्न-भिन्न अवसरों पर हुई है। साथ ही अधिकांश लेखों के केन्द्र में 'रामचरित मानस' ही रहा है। तुलसीदास जी की अन्य रचनाओं पर चर्चा कम हुई है। इन लेखों को तीन मुख्य भागों में रखा गया है- काव्य और उसका परिप्रेक्ष्य कथा की साधना और विमर्श की संभावना।

मिश्र जी ने विपुल साहित्य रचा है। उसे व्यवस्थित रूप से प्रकाश में लाने की योजना पर कार्य प्रगति पर है। भाई डॉ. दयानिधि मिश्र के साथ मिलकर सामग्री का संकलन और सम्पादक का कार्य हो रहा है। शीघ्र ही समग्र रचनाएं ग्रंथावली के रूप में उपलब्ध होंगी।

मध्ययुगीन काव्य का परिप्रेक्ष्य और गोस्वामी तुलसीदास

मध्ययुगीन- विशेषकर पूर्व-मध्ययुगीन-कविता के बारे में प्रायः यह समझा जाता है कि वह मुक्तत काव्य है, प्रबंधात्मक नहीं है, व जितनी लीला पदावलियाँ है वे सभी प्रबंध रचना के रूप में न केवल प्रस्तुत हैं, बल्कि संगीतकारों में इसी रूप में विख्यात भी हैं। इसके पूर्व जयदेव ने 'गीतगोविंद' की रचना चौबीस पदावलियों में की थी। ये पदावलियाँ अपने आप में अलग-अलग रमणीय होती भी परस्पर गुँथी है। प्रबंध तो उसी को कहते हैं, जिसमें अन्विति समग्र ग्रंथ के पढ़ने में समझ में आए और ग्रन्थ का प्रत्येक अंश से अनुभव के काल में एक क्रम में हो तथा उस, अनुभव काल में पूर्वपर संबंध हो। सूर का काव्य भी लीला प्रबंध है। तुलसीदास जी ने इस लीला प्रबंध को पूर्व-मध्य युग की कथा-प्रधान और विशेषकर घटना-प्रधान सूफी प्रबंध रचना के साथ समन्वित करके एक नए प्रकार की प्रबंध रचना प्रस्तुत की है। इस प्रबंध-रचना में लोककथा का स्वाद है, पुराणकथा का स्वाद है, महाकाव्य का स्वाद है और संवादों के बीच-बीच में आने वाले वर्णनात्मक प्रसंगों का गुंफन है। सूर के पद यदि कृष्णलीला के विशेष अवसर के लिए कीर्तन के रूप में प्रस्तुत हुए तो इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि ये पद किसी अनुक्रम में नहीं रचे गए, अनुक्रम बहुत कुछ तो पौराणिक है और कुछ सूर की सद्भावना है। गोवर्द्धन लीला के बाद ही रामलीला है। यह शिव भागवत का क्रम है। इस दोनों के बीच में वेणुगीत का प्रसंग ही उनकी उद्भावना है। इस उद्भावना में यह संभावना मूर्त

होती है कि एक विराट प्रकृति के साथ एकात्म रूप में साक्षात्कार हो जाए और वह रूप वंशी के सर में ऐसा रूपांतरित हो जाए जो कानों के भीतर से अंतरात्मा में प्रविष्ट होकर एकाएक सारे दूसरे संबंधों को बिसरा दे, केवल उन्हीं से संबंध की एक अविच्छिन्न धारा प्रवर्तित कर दे।

तुलसीदास का प्रबंध महाकाव्य रचना से बिल्कुल अलग है और सूफी प्रेमाख्यानों से भी अलग हैं, श्रीमद्भागवत से बहुत प्रभावित होते हुए भी श्रीमद्भागवत की पौराणिक योजना से अलग है। इस महाकाव्य में प्रबंध काव्य के अभिलक्षण के साथ सूफी प्रेम काव्य के भी कुछ अभिलक्षण उपस्थिति हैं। कथा बीज का प्रस्फुटन हैं, उसका शाखाओं में प्रसार है, कथा का निर्वहण है तथा किसी अभिलक्षित फल की प्राप्ति भी है। इसी प्रकार पुराण शैली के अनुसार कथा कहाँ से, कैसे शुरू हुई, कैसे आगे बढ़ी- इसका प्रकार पुराण परिचय भी है। सूफी काव्य की तरह इसमें बारह मासे की संकेतात्मक छटा है। प्रेम तत्त्व की विभिन्न मनोदशाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है और लौकिक में अलौकिक की झाँकी दिखाते रहने का कौतुक भी है इन सबके बावजूद तुलसी का प्रबन्ध एक नया प्रबंध है। इसे किसी पूर्व लक्षणों में बाँधना असंभव है। तुलसीदास के पहले किसी भी महाकाव्य में कथा के अवतरण का ऐसे सुन्दर रूप नहीं मिलेगा जैसा 'मानस' में मिलता है। मानस का रूपक एक अंतहीन, खुले हुए वृत्त में कथा को डाल देता है और एक संक्षिप्त संकेत दे देता है कि 'रामकथा कै मिति जग नाही।'

इस संकेत में ही यह निहित है कि रामकथा, राम का चरित-ये समाप्त नहीं हुए। ये निरंतर लोगों के हृदय में उठती गूँज और अनुगूँज के द्वारा जाति चेतना की लहर, वह भी अछोर लहर बन जाते हैं। सूफी कवियों ने प्रारंभ में एक परमात्मा-पैगंबर स्तुति के साथ-साथ शाहेबख्त (समकालीन राजा) की स्तुति भी की है। उसमें यह ध्वनित है कि सूफी कवि इतिहास के क्रम को विशेष करके राजनीतिक इतिहास के क्रम को, अधिक महत्त्व देते हैं। तुलसीदास देव-वंदना तो करते हैं अपने चरित्रों की वंदना करते हैं, समस्त संतों की परंपरा की वंदना करते हैं, इसके साथ-साथ वे लोक भी वंदन करते हैं, जिसमें प्रभु की नरलीला घटित होती है। वह किसी इतिहास मात्र में घटित होकर कहीं समाप्त नहीं हो गई उसके नए-नए रूप में घटने की संभावना बराबर बनी रहती है।

आरंभ में ही उन्होंने यह संकेत दे दिया कि रामावतार के अनेक कारण हैं। हम जिस लीला का अवतरण करने जा रहे हैं उसका कारण है नारद के

अंहकार को नष्ट करने के लिये उनकी एक लीला और उस लीला में ही नारद के अंहकार का ध्वंस और उनका भगवान के शाप कि तुम महाकामी की तरह नारी के विरह में व्याकुल हो वन-वन फिरोगे। भगवान के द्वारा उस शाप को सहर्ष शिरोधार्य करना, यही सबसे अधिक सटीक कारण है। इसी प्रकार रावण के आविर्भाव का कारण जय-विजय को मिला हुआ शाप तो है ही, पर उसके साथ प्रताप भानु नामक धर्मशील राजा के भीतर सोए हुए अनंत भोग की लिप्सा की परिणति भी देना है। धर्मबुद्धि इतनी सरल नहीं होती, वह जटिल होती है।

रावण जैसा प्रताप भानु उस जटिलता को समझ नहीं पाता और धर्म को एक बाहरी आवरण समझता है, हद-से-हद एक साधन समझता है इसलिए वह हच्चा खाता है और पाखंड के आगे नतमस्तक हो जाता है। उसका परिणाम यह होता है कि उसे शाप मिलता है कि तुममें चूँकि एक राक्षस बुद्धि समा गई है। तुम शरीर से भी राक्षस हो जाओगे तुलसीदास रावण को खलनायक के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, रावण को प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, वे रावण के मनुष्य की सहज चेतना में जो अपने बार-बार ठीक रास्ते पर ले जाने का स्वभाव करता है, उसके विपरीत एक राक्षसी स्वभाव जो जानकर भी सीखना नहीं चाहता सुधरना चाहता है और विशेष प्रकार के दंभ में रहता है उसके प्रतिरूप के रूप में सामने रखा है। रावण की तरह आचरण नहीं रखना चाहिए, केवल यही शिक्षा उनके रामचरितमानस से नहीं मिलती है। अपराजेय रावण का राम के हाथों मारा जाना रावण का अभीष्ट है। वह इसी के लिये पूरी तैयारी करता है। वह सीधे रास्ते से राम को नहीं पा सकता, क्योंकि सीधा रास्ता उसके स्वभाव में नहीं है।

तुलसीदास मध्यकालीन शक्तिशाली 'भक्ति आंदोलन' की एक बेहद महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। भक्ति का यह आंदोलन अपने चरित्र में पूर्णतः और मूलतः 'लोक' का आंदोलन था। इसने भारतीय लोक जागरण के अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य को संभव बनाया। भारत के इतिहास में भक्ति आंदोलन सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन की दृष्टि से निर्णायक रहा है। इसमें भक्ति की महती भूमिका थी। संतों/भक्तों ने भक्ति व धर्म को शास्त्रीय चौखटे से मुक्त करते हुए उसे लोक का आत्मीय अंग बना दिया। अब भक्ति सर्वजन सुलभ वस्तु थी। उसे उसकी शास्त्रीय जड़ताओं/विधि-निषेधों से मुक्त करने का सिलसिला चल पड़ा। ईश्वर और भक्ति के द्वारा गरीब, वंचित/अभावग्रस्त, अपढ़ बहुसंख्यक जनता के लिए भी खुल गए। यह थी, भक्ति आंदोलन से जुड़े हमारे संतों/भक्तों की रचनात्मक

भूमिका। यह आंदोलन धर्म व समाज की जड़ताओं के खिलाफ प्रतिरोध का एक सुसंगठित प्रयास था, जिसकी कामयाबी शत-प्रतिशत थी। लोकभाषाओं में धार्मिक ग्रंथों के अमृत को सामान्य जन तक पहुँचाने का कार्य शुरू हुआ। परिणामस्वरूप तेरहवीं शताब्दी में नामदेव, ज्ञानदेव आदि मराठी संतों ने हिंदी व मराठी जैसी लोकभाषाओं में सामान्य जन-वंचित भागवत, उपनिषद्, वेद आदि ग्रंथों के भाष्य आदि करके संस्कृत व अभिजन वर्चस्व को चुनौती दी। यह अनायास नहीं था कि धर्म व भक्ति के प्रति लोकरुचि व लोकाग्रह में वृद्धि हुई, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों यथा संगीत, कला, स्थापत्य आदि में भक्ति का लोक-संग्रही रूप परिलक्षित होने लगा। इस प्रकार समूचे भारतवर्ष में लगभग साथ-साथ भक्ति की लहर प्रवाहित होने लगी। महाराष्ट्र में नामदेव, ज्ञानदेव सहित ढ़ेरों संत हुए और भक्ति के कई संप्रदाय उठ खड़े हुए, जो आज भी जनता के बीच लोकप्रिय बने हुए हैं। ऐसे ही गुजरात में नरसी मेहता, पंजाब में गुरु नानकदेव व अन्य संत-भक्त, बंगाल और उड़ीसा भी इनसे अछूता नहीं रहा। उत्तर में रामानंद जी के शिष्यों को भक्ति आंदोलन को लोक-व्याप्ति देने व उसे अतिशय आत्मीय व अंतरंग बनाने का श्रेय दिया जाना चाहिए। इनमें महात्मा कबीर, रैदास, दादू, रज्जब आदि महान संत हुए, जिन्होंने भक्ति और ईश्वर को सारे निषेधों से मुक्त करके 'लोकमंगल' का साधन बना दिया। यहाँ यह जरूर ध्यान रखने की बात है कि इस दीर्घावधि-व्यापी व विस्तृत क्षेत्र में सक्रिय भक्ति-आंदोलन में भक्ति को सर्वजन सुलभ बनाने का दर्शन केंद्र में रखते हुए खूब प्रयोग हुए हैं। निर्गुण, सगुण और निर्गुण-सगुण दोनों को मान्य ठहराते हुए धारणाएँ सामने आई।

गोस्वामी तुलसीदास सोलहवीं शताब्दी की उपज हैं। उनके सामने जो समाज विद्यमान था, उसमें बहुसंख्यक जनता अशिक्षित, निर्धन, बेहाल ओर व्याकुल थी, जिसे अपनी मुक्ति के लिए कोई मार्ग ही नहीं सूझता था। समाज के मालिक अभिजन थे। धर्म और ईश्वर पर ताला लगा था। कुल मिलाकर हीन दशा वाले देश में उन्होंने जन्म लिया था। और स्वयं भी चौतरफा अभाव, उपेक्षा और दुर्दशा भोगी थी। लेकिन वे समाज की पीड़ा को समझते थे और उससे उबारने का संकल्प था, उनके सामने। निराला जी की 'तुलसीदास' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुत कुछ संकेत करती हैं -

'कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम

वह रुद्ध द्वार का छाया-तम तरने को
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार
उमड़े भारत का भ्रम अपार होने को।'

निराला ने बहुत साफ लिखा है कि चहुँ ओर रूढ़ियों के विषम वज्र-द्वार हैं, जिनसे पार पाना आसान नहीं था और भारतवर्ष भ्रमित था। ऐसे में देश व देशवासियों की मुक्ति का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और जटिल था। तुलसीदास ने अपने युग की जड़ता पर प्रहार किया, सुचिंतित व सुनियोजित तरीके से। उन्होंने भक्ति को लोक-व्यापी स्वरूप देने में कुछ भी प्रयत्न बाकी नहीं रखा। इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा ने बहुत सटीक टिप्पणी की है - 'तुलसीदास भक्त कवि थे। उनके साधनाकाल के लिए निराला जी ने 'ज्ञानोद्धत प्रहार' शब्दों का प्रयोग किया। तुलसीदास अपने युग में साधारण जनता के लिए राजमार्ग को कठिन समझते थे। इसलिए उन्होंने भक्ति पर विशेष बल दिया और भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया।'

रामविलास जी साफ-साफ लिख रहे हैं कि सामान्य जनोनुकूल/सामान्य जन-सुलभ साधन, मुक्ति का, भक्ति है। यह गोस्वामी जी बखूबी जानते थे। क्योंकि यह ऐसा साधन है, जिसमें धन लगना नहीं है, अलग से समय निकालने (मतलब अपने काम का हर्जा करके) की आवश्यकता न थी। इसमें सिर्फ और सिर्फ प्रेम की, स्नेह की दरकार थी -

'प्रीति राम सों नीति पथ चलिय रागरिस जीति।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति।'

देखिए कैसा सुंदर और सरल तरीका बता रहे हैं, भक्ति का, कुछ ज्यादा नहीं करना है, भक्त को। उसे भगवान श्रीराम के प्रति प्रेम भाव रखते हुए, अपने राग-द्वेष को काबू में रखते हुए नीति-मार्ग पर चलना है, वह भक्ति के क्षेत्र में सिद्ध हो जाएगा। इस प्रकार तुलसी भक्ति का तौर-तरीका सिखाते हुए एक संयमी नागरिक व नैतिक समाज बनाने का संकल्प प्रस्तुत करते हैं। तुलसी साहित्य में 'भक्ति' के आदर्श की प्रायः चर्चा है। मैं यहाँ सिर्फ निम्नलिखित पद उद्धृत करके तुलसी का भक्ति संबंधी स्पष्ट मंतव्य प्रस्तुत कर रहा हूँ -

'धरम न अरथ न काम रुचि गति न चहउँ निरवान।
जनम-जनम रति राम-पद यह बरदानु न आन॥'3

मानव जीवन के चरम लक्ष्यों को तिलांजलि देकर तुलसी अपने लिए 'रति राम पद' माँगते हैं। यही है, भक्ति। अनन्यता, अखंड निष्ठा, अपने आराध्य के प्रति –

'एक भरोसो, एक बल, एक आस-विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥'

अपने ईश्वर के प्रति अखंड विश्वास भक्त का चरम लक्ष्य होना चाहिए। यह बाबा तुलसीदास कह रहे हैं।

ऐसा नहीं है कि तुलसीदास भक्ति के शास्त्रीय स्वरूप से परिचित नहीं थे। लेकिन उन्होंने भक्ति की जन-मुक्ति संबंधी असाधारण क्षमता का अनुमान करते हुए इस संबंध में नए प्रयोग भी किए और हठवादी रवैया त्यागकर भक्ति-मार्ग को सरल, सुगम व जनमार्ग के रूप में परिवर्तित कर दिया। ऐसा करते हुए वे उदार व सहिष्णुता वाला किंतु सम्यक् दृष्टि संपन्नता वाला रास्ता चुनते हैं। हम सबको विदित है कि समाज में एक तरफ निर्गुण भक्ति का जोर शोर से प्रचार-प्रसार था, वहीं दूसरी ओर सगुण मार्गी थे। संघर्ष अवश्यंभावी था। यही नहीं सगुण मार्ग में भी आराध्य के प्रश्न पर समाज एकमत नहीं था। कोई शैव था तो कोई शाक्त, कोई रामोपासक था, कोई कृष्णोपासक। धर्म और ईश्वर के मसले बेहद संवेदनशील होते हैं। ऐसे में हिंदू समाज की तत्कालीन रूपरेखा और उसकी जीवन-दृष्टि कैसी क्षीण और संकीर्ण रही होगी? सहज अनुमान का विषय है। तुलसीदास की कठिन परीक्षा थी, लेकिन अपनी ज्ञान-साधना, भक्ति व लोकसंग्रही दृष्टि के कारण उन्होंने इन सब संकीर्णताओं से पार पा लिया। सबका समन्वय करके। यह आसान काम कदापि नहीं था, किंतु तुलसी तो लोकनायक थे। उन्होंने दुरूह कार्य आसान कर दिया। यहाँ इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा गोस्वामी जी पर की गई टिप्पणी विशेष रूप से उद्धरणीय है – ''तुलसीदास को जो अभूतपूर्व सफलता मिली, उसका कारण यह था कि वे समन्वय की विशाल बुद्धि लेकर उत्पन्न हुए थे। भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो।'' तुलसीदास निर्गुण और सगुण के रगड़े का सुंदर समाधान यह कहकर देते हैं कि –

'सगुनहि अगुनहि नहि कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अजजोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई।'

अर्थात् दोनों में कोई भेद नहीं है, किंतु वरीयता देने की बात सामने आती है तो यहाँ बाबा समाज-रुचि का, समाज-मर्यादा का और सुगमता की कसौटी पर सगुण भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं -

'सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विजपद प्रेम।'

तुलसीदास जी का चयन बहुत स्पष्ट है और इस चयन के आधार भी स्पष्ट हैं। सामान्य जन के लिए क्या श्रेयस्कर है? इसी आधार पर भक्ति, उसकी विधि और आराध्य का सुनिश्चयन होगा। बाबा के यहाँ शास्त्रोक्त (भागवतादि ग्रंथों में कथित) भक्ति के प्रकारों की भी स्पष्ट चर्चा है। उनके यहाँ नवधा भक्ति के सब प्रकार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, साख्य और आत्म-निवेदन, सब तरह की भक्ति-पद्धतियों की प्रायः चर्चा आती है, किंतु तुलसीदास को 'दास्यभाव' की भक्ति अतिशय प्रिय है -

'अस अभिमान जाई जनि भोरें। मैं सेवक रघुपति पति मोरें।।'
'सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए।।'

शास्त्रोक्त नवधा भक्ति के साथ ही साथ तुलसीदास ने एक और तरह की नवधा भक्ति, जिसका प्रतिपादन 'अध्यात्म रामायण' में मिलता है, को जनोपयोगी जानकर उत्साहपूर्वक समर्थन किया है -

'नवधा भगति कहीं तोहि पाहीं। सावधान सुनि धरि मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजनु सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहुकर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जगदेखा। मोते संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ कथा-लाभ संतोषा। सपनेहु नहि देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।
नव महु एकौ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोई अतिसय भामिनि प्रिय मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।।
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भई सोई।।'

यह नवधा भक्ति का उपदेश/संदेश भगवान श्रीराम द्वारा शबरी जैसी निम्नकुलीन, अपढ़, असंस्कृत स्त्री को दिया जा रहा है। यानि भक्ति सर्वसुलभ है।

यहाँ जाति, संप्रदाय, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं है। यह तुलसीदास की व्यापक दृष्टि का परिणाम है। कहीं कोई शास्त्रीय विधि-निषेध नहीं, आसान रास्ते, एक नहीं नौ और उसमें भी कहते हैं एक भी, जिसके पास है, वह मेरा अत्यंत प्रिय है और हर प्रकार से वह दृढ़ भक्त है। यह है तुलसी की सामंजस्यकारिणी प्रतिभा। वे एक सशक्त समाज का स्वप्न साकार करना चाहते थे, जो सिर्फ मजबूत ही नहीं होगा, बल्कि मानवीय भी होगा। नैतिक होगा। इसीलिए तुलसीदास भक्ति का सर्वाधिक सरलीकृत/सुगम स्वरूप सामने रखते हैं, जिसमें संपूर्ण चराचर जगत की भागीदारी हो सकती है। यानि भक्त कोई भी हो सकने की पात्रता रखता है। इसीलिए वे शबरी व गीध आदि को भी सिद्ध भक्त घोषित करते हैं, जिनको प्रभु श्रीराम ने उनके प्रेम के वश में होकर मोक्ष प्रदान किया -

'सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नामु उधारे अमित खल बेद बिदित गुननाथ॥'

तुलसीदास की भक्ति की गंगा में सबके लिए समान अवसर हैं। वे वर्ण, जाति, धर्म, संप्रदाय आदि आधारों पर किसी भी व्यक्ति को भक्ति-पथ पर चलने से बरजते नहीं है और उन्हें सुगति दे देते हैं -

'देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबाती। सादर सकल जोहारी रानी॥
जानि लखन सम देहिं असीसा। जियहु सुखी समलाख बरीसा॥
निरखि निषादु नगर नर-नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥'

केवट, निषाद, कोल, भील, बंदर, भालू, उपेक्षित स्त्रियों, जटायु जैसा पक्षी सिर्फ 'प्रेमाभक्ति' के बल पर मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं। उन्हें आदर व सम्मान भी प्राप्त हो जाता है -

'बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहहु पुर आवत जाता॥'

निषाद के अयोध्या से विदा होते समय श्रीराम के उद्‌गार हैं, जिसमें गोस्वामी जी ने उनसे निषाद को सखा और भरत जैसा भाई कहलवाया है। कितना आत्मीय और मानवीय प्रसंग है? क्या कोई इसके आस-पास का वर्णन अन्यत्र है? रामविलास जी ने तुलसीदास की प्रगतिशील दृष्टि को रेखांकित करते हुए लिखा है -

'जब राम चित्रकूट पहुँचते हैं, तब तुलसीदास कोल किरातों को नहीं भूलते। 'यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नवनिधि घर आई।' बीस

पंक्तियों में राम से उनकी भेंट का वर्णन करने के बाद तुलसीदास यह टिप्पणी देते हैं – 'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा।' जब आप याद करेंगे कि मुगल बादशाहों के जमाने में इन कोल-किरातों का आखेट होता था और जो पकड़े जाते थे, वे काबुल में बेच दिए जाते थे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शासन में लाखों की तादाद में इन्हें जरायम पेशा करार दिया गया, तब तुलसीदास की प्रगतिशीलता समझ में आएगी।'

गोस्वामी जी के आराध्य श्री राम विष्णु के अवतार हैं और वे मनुष्यों की तरह माँ के गर्भ से उत्पन्न होते हैं, सामान्य जीवनचर्या में संलग्न होते हैं और फिर समाज में धर्म (व्यवस्था) की सुस्थापना के लिए, समाज को नैतिक व मानवीय बनाने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। उनके जीवन में धर्म और नीति से ऊपर कुछ भी नहीं है। इसके लिए उन्हें व्यक्तिगत जीवन में त्याग करना पड़ता है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। समाज मर्यादा से, अनुशासन से दीर्घजीवी होता है। इसलिए श्रीराम स्वप्न में भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते हैं। उनका जीवन भारतीय जनता के लिए प्रेरणा का अजस्त्र स्रोत है। सामान्य जन श्रीराम के शक्ति, शील और समन्वित अप्रतिम स्वरूप पर न्योछावर है और न्योछावर हो भी क्यों नहीं? गोस्वामी जी ने लिखा है कि –

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदौ सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।'

सुखी, संपन्न और अघाए लोगों की सब तरफ पूछ होती है। उन्हें हाथों-हाथ लिया जाता है, लेकिन गरीब, दु:खी, सब तरह से वंचित, उपेक्षित, शबरी, निषाद और जटायु की सुधि कौन लेता है?

'ऐसो को उदार जगमाहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानीं
सो गति देत गीध सबरी कहुँ, प्रभु न बहुत जिय जानी।
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं।
तुलसीदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो।।'

तुलसीदास अपने आराध्य को व्यक्तिगत मोक्ष के लिए कब्जे में न करके उनको प्रमाणों सहित लोक हितकारी रूप में स्थापित करते हैं। भगवान श्रीराम

लोक रक्षक हैं। उन्होंने लोकमंगल के लिए दुखियों के कष्ट मिटाने के लिए धरती पर सामान्य रूप में आना स्वीकार किया है। वे बेहद मानवीय हैं, कृपाकर हैं, करुणानिधान हैं, गरीब निवाज हैं। तुलसी ने उन्हें प्रायः अत्यंत करुण होकर भावपूर्ण तरीके से स्मरण किया है। विनय-पत्रिका में ऐसे ढेरों पद हैं, जिनमें तुलसी की व्यक्तिगत परेशानियों के रूप में समाज के दीन, दुःखी लोगों की अर्जी श्रीराम दरबार में पेश की गई है। विनय-पत्रिका का निम्नलिखित पद उद्धरणीय है -

'जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे।
कौने देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग-मृग, ब्याघ, पषान बिटप जड़ जवन कवन सुर तारे।
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे।'

देवता, दानव, मुनि आदि सभी माया ग्रस्त हैं। उन्हें अपने से ही फुर्सत नहीं है। इसीलिए गोस्वामी जी पतित पावन, दीनों के प्रिय दीनानाथ और पशु, पक्षी, जीव-जंतु सबका उद्धार करने वाले प्रभु श्रीराम की शरण में हैं और यह उनका स्पष्ट संकेत, उनके जैसे सभी दुखियों के लिए है कि व्यर्थ भटकने की आवश्यकता नहीं है। प्रभु श्रीराम परम करुणाकर हैं, यह सर्वविदित है। इसलिए दीन-दयालु श्रीराम की शरण में विश्वस्त होकर बने रहिए। मुक्ति लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

तुलसी के आराध्य अपने भक्तों को अपने ऊपर रखते हैं -

'भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक रामकर दासा॥'

राम का दास राम से बढ़कर है। तुलसीदास की भक्ति सिर्फ मुक्ति (मोक्ष) का टिकट नहीं दिलाती है बल्कि लोक में रहते हुए, लोक की तमाम असाध्य कठिनाइयों से भी मुक्ति दिलाती है। शरीर के रहते ही चारों पुरुषार्थों की उपलब्धि का साधन श्रीराम की भक्ति है -

'सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहि अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥'

मनुष्य को शरीर धारण करते हुए दुख-दारिद्रय का निकट सामना करना पड़ता है। जीवन, वह भी गरीब आदमी का, आसान नहीं है। तुलसी को गरीब

आदमी की इस पीड़ा का अंतरंग ज्ञान था। तभी उन्होंने भूख और दरिद्रता पर जितना लिखा है, उतना किसी अन्य बड़े रचनाकार ने नहीं लिखा है –

'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।'
'आगि बड़बागि ते बड़ी है आगि पेट की।'

अपने समय के भयावह यथार्थ का जैसा मार्मिक ज्ञान, उन्हें था, किस रचनाकार के यहाँ इतने स्पष्ट शब्दों में दिखता है?

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि।
बनिज को बनिक, न चाकर को चाकरी॥
जीविका विहीन लोग, सीद्यमान सोच बस।
कहैं एक-एकन सों, कहाँ जाई, का करी॥'

कैसी परवशता है। कुछ सूझता नहीं है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की हाहाकारी स्थिति है। यह पारलौकिक बात नहीं है। सीधे-सीधे अपने लोक की दुर्दशा के प्रामाणिक चित्र हैं। इस प्रकार तुलसीदास लोक में रहकर, लोक की चिंता करते हुए, लोक को विश्वास देकर जीवन में सरसता पैदा करते हुए श्रीराम की भक्ति की ऐसी परिकल्पना करते हैं, जो जाति, धर्म, संप्रदाय, रंग-रूप, धनी-निर्धन, ऊँच-नीच के संकीर्ण भेदों से ऊपर उठकर 'लोकहितकारी' राजमार्ग बन सके, जिस पर चलते हुए सामान्य व्यक्ति सरल तरीके से अपना जीवन व्यतीत करते हुए, समाज की अभिवृद्धि में अपना योगदान करते हुए अपने परलोक के प्रति भी आशावान बना रहे।

संक्षेप में गोस्वामी जी अपनी भक्ति के माध्यम से लोकमुक्ति का शत-प्रतिशत प्रामाणिक साधन उपलब्ध करा रहे थे। डॉ. रामविलास शर्मा की तुलसी पर की गई टिप्पणी को उद्धृत कर तुलसी की 'लोकमुक्ति' वाली दृष्टि को सहज ही समझा जा सकता है – ''तुलसी आत्मकेंद्रित व्यक्ति न थे। उन्हें जितना अपने दु:ख का ज्ञान था, उतना ही दूसरों के दु:खों का भी। उन्होंने राम में जितनी करुणा की कल्पना की थी, वह सब उनके हृदय में विद्यमान थी।'' तुलसी की यह विराट मानवीय सहानुभूति उनकी भक्ति का अभिन्न अंग है। इसी कारण वह हमारी जनता के गुणों का जितना सुंदर चित्रण कर सके हैं, उतना अन्य कवि नहीं। राम, लक्ष्मण, सीता, भरत आदि के चरित्र में उन्होंने भारतीय जनता की ही शूरता, धैर्य त्याग, स्नेह आदि गुणों की उदात्त अभिव्यंजना की है। कामायनी के लेखक जयशंकर प्रसाद ने तुलसी और राम के संबंध में एक बड़ी मार्मिक पंक्ति लिखी थी – ''मानवता को सदाय राम का रूप दिखाया।''

7

तुलसी की काव्य-कला और कवितावली

गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। तुलसी बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि थे। पूर्व मध्यकाल में मुख्य रूप से काव्य रचना की दो शैलियाँ प्रचलित थीं-प्रबंध और मुक्तक। तुलसी ने दोनों काव्य रूपों में रचना की। तुलसी ने मानस की रचना प्रबंध-शैली में की है और विनय-पत्रिका ,गीतावली ,कृष्णगीतावली और कवितावली आदि की रचना मुक्तक-शैली में की है। गोस्वामी तुलसीदास के बारह ग्रन्थ प्रसिद्ध माने जाते हैं -रामचरितमानस, दोहावली, कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका, रामललानहछू, पार्ववती मंगल, जनकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपिनी, कृष्णगीतावली और रामाज्ञा प्रश्नावली आदि।

कवि के पास भाषा एक ऐसा माध्यम होती है जिसके द्वारा कवि अपने प्रतिपाद्य को शब्दायित करके पाठकों से तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ हो पाता है। काव्य में शब्द और अर्थ का समन्वय। शब्द-शक्ति को उभारता है। जिससे कवि कर्म प्रभावी होकर पाठक समूह तक पहुँचता है। शब्द संतुलन ही तुलसी के काव्य की विशेषता है। इसी विशेषता के कारण तुलसी के काव्य के अंतर बाह्य पक्ष अर्थात् अलंकार, चित्रात्मकता, गुण-व्रती इत्यादि विशेषताओं को मुखर बनाता है। तुलसी के समय लोक की भाषा में काव्य रचना का

सम्मान उस समय के पंडित वर्ग में नहीं था। तुलसी ने पंडित वर्ग को साधते हुए। लोक भाषा को अपने काव्य का आधार बनाया। यद्यपि संस्कृत की उपेक्षा उन्होंने नहीं की। इसीलिए मानस , विनय-पत्रिका आदि में अनेक 'लोक संस्कृत में हैं। सामर्थ्य होते हुए भी तुलसी ने काव्य भाषा के लिए लोकव्यवहार की भाषा को ही चुना। तुलसी पर जन दबाव भी हो सकता है। क्योंकि संस्कृत भाषा का लोक में महत्त्व नगण्य था। हाँ पुरोहित वर्ग में जरूर था। यही कारण है कि मध्यकाल में जनभाषा में रचना करने वाला कवि जितना सफल हुआ उतना संस्कृत में रचना करने वाला नहीं। क्योकि संस्कृत को जनसमर्थन नहीं मिला था। इसिलिय तुलसी ने 'गिरा ग्राम्य' भाषा को ज्यादा महत्त्व दिया। तुलसी का लक्ष्य लोक संग्रह था। मध्यकाल में तुलसी के समय तक काव्य भाषा के रूप में अवधी और ब्रजभाषा का प्रचलन था। तुलसी ने दोनों में काव्य रचना की। तुलसी की काव्य भाषा के सम्बन्ध में शुक्ल जी ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–"सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामी जी की है भाषा की सफाई और वाक्य रचना की निर्दोषता जो हिंदी के और किसी कवि में नहीं पाई जाती। गठी हुई भाषा और किसी की नहीं है। सारी रचनाएँ इस बात का उदहारण हैं।" तुलसी ने मानस में रामकथा अवधी में कही है। कवितावली, गीतावली और विनय-पत्रिका की रचना ब्रजभाषा में की।

कवितावली की भाषा में तुलसी ने लोक में प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। लोक में प्रचलित ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। कवितावली में तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कविता वाली में डिंगल भाषा का भी प्रयोग मिलता है-

"डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र–सर।
ब्याल बधिर तेहि काल,बिकल दिगपाल चराचर।।

-बालकाण्ड -11

तुलसी की प्रवृत्ति रही है उन्होंने देसी-विदेशी भाषाओं के शब्दों का अपने काव्य में भरपूर उपयोग किया है। जिससे उनकी अभिव्यक्ति सशक्त हो सकी। तुलसी कवितावली में अरबी-फारसी भाषा के शब्दों का बखूबी प्रयोग करते हैं। जैसे अरबी के गुलाम , हराम , जाहिल आदि और फारसी के दिल, दाम आदि। कवितावली के उत्तरकाण्ड में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग बहुतायत हुआ है, जैसे–दगाबाज, गरीब , गुलाम , उम्रिदाराज , मसीत , निबाह, साहबी , मरद, खजाना आदि।

राम गरीबनेवाज भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेव्वाजी।

उत्तरकाण्ड -95

कवितावली की भाषा में मुहावरे और लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है। जैसे–धोबी कौ सो कूकर ,न घर को न घाट को। भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, क्रिया, गुण आदि को हृदयगम बनाने में जब भाषा और उसकी शब्द शक्तियाँ जबाब दे जाती हैं। तब कवि अप्रस्तुत विधान की ओर उन्मुख होता है। इसे अलंकार विधान की संज्ञा भी दी जाती है। विभिन्न अलंकार वस्तुत:कथन की विभिन्न शैलियाँ हैं। शैली से तात्पर्य कथन प्रणाली या पद्धति से है। शब्दों की अर्थ सम्पदा को अक्षम मानकर जब कवि अप्रस्तुत विधान की ओर उन्मुख होता है तो वह भाषा से इतर मार्ग को ग्रहण करता है। अलंकार की दृष्टि से कवितावली महत्त्वपूर्ण रचना है। कवितावली में अलंकारो की सीमा को उन्होंने अच्छी तरह पहचाना है। उन्होंने अधिकांशत: भाव , क्रिया, रूप , गुण आदि का उत्कर्ष दिखाने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग किया है , मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं। अलंकारों में रमणीयता का गुण होना चाहिए। काव्य में अलंकार की स्थिति और उसके स्वरूप का विवेचन करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है- "वह कथन की एक युक्ति या वर्णन शैली मात्र है। वह वर्णन शैली सर्वत्र काव्यालंकार नहीं कहला सकती। उपमा को ही लीजिये जिसका आधार होता है सादृश्य। यदि कहीं सादृश्य योजना का उद्देश्य बोध कराना मात्र है तो वह काव्यालंकार नहीं है।" शुक्ल जी के अनुसार तुलसी के यहाँ अलंकारों का प्रयोग निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ है–"भावों की उत्कर्ष व्यंजना में सहायक , वस्तुओं के रूप सौन्दर्य , भीषणत्व आदि का अनुभव तीव्र करने में सहायक। गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक। क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक।" कवितावली में प्रयुक्त अलंकारों का विवेचन इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर किया जायेगा। कवितावली में तुलसी ने भावों की रमणीय अभिव्यक्ति अनुप्रास अलंकार के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। जिसमें सीता की थकान राम समझते हैं जैसे–

पुरतें निकसी रघुवीर वधू ,
धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की,
पुट सूख गए मधुराधर वै।
फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक,

पर्णकुटी करि हौ कित ह्ववै।
तिय की लखि आतुरता पिय की,
अंखिया अति चारू चलीं जल च्वै।

अयोध्याकाण्ड -11

रूप का अनुभव मुख्यत: चार प्रकार से होता है अनुरंजक, भयावह, आश्चर्यजनक या घृणा उत्पादक। यहाँ बिम्ब प्रतिबिम्ब का होना आवश्यक है।जैसे

बालधी बिसाल विकराल ज्वाल लाल मानौ,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योम वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीररस वीर तरवारि सी उघारी है।

सुन्दरकाण्ड -5

इसमें उत्प्रेक्षा और संदेह का व्यवहार किया गया है। इधर-उधर घूमती हुई जलती हुई पूँछ तथा काल की जीभ और तलवार में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव (रूप सादृश्य) भी है तथा संहार करने और दाह करने में वस्तु-प्रतिवस्तु धर्म भी है। इस दृष्टि से यह गुण का अनुभव कराने में भी सहायक है। क्रिया का तीव्र अनुभव कराने के लिए कवितावली में तुलसी ने अनुप्रास की योजना की है। जैसे–?

छोनी में के छोनीपति,
छाजै जिन्हें छत्रछाया।
छोनी-छोनी छाए ,
छिति आए निमिराज के। बालकाण्ड -8

तुलसीदास को रूपक अलंकार का बादशाह कहा जाता है। कवितावली में उन्होंने सांगरूपक का सुन्दर प्रयोग किया है किया है। उदाहरण के लिए–

तुलसी तेहि औसर सोहैं सवै अवलोकति लोचनलाहू अलीं। अनुराग-तड़ाग में भानु उदें बिगसी मानो मंजुल कंजकली।

अयोध्याकाण्ड -22

कवितावली एक व्यंग्य काव्य है। जिसकी भाषा व्यंजना शक्ति से संपन्न है। कवितावली के व्यंग्य का सौन्दर्य और सामर्थ्य उसे एक महत्त्वपूर्ण कृति साबित करता है। कवितावली में व्यंग्य ध्वनि का प्रयोग सर्वत्र देखा जा सकता है। अभिधात्मक अर्थ की अपेक्षा संकेतित अर्थ अधिक रमणीय प्रतीत होता है। जहाँ कठिन प्रसंग आये अथवा अंतरद्वंद उपस्थित हुआ तुलसी वहां व्यंग्य से ही

काम लेते हैं। व्यंग्य के रूप में संचारी भावों की निबंधना कवितावली में देखने लायक है–

पुरतें निकसी रघुवीर वधु ,धरि धीर दए मग में डग द्वै। झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूख गए मधुराधर वै।

फिरि बूझति हैं चलनों अब केतिक ,पर्णकुटी करि हौ कित ह्वै। तिय की लख आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारू चली जल च्वै।

अयोध्याकाण्ड -11

भाषा और अलंकार की भांति तुलसी ने छंद को भी काव्य का अनिवार्य उपकरण माना है। मानस के मंगलाचरण में उन्होंने "वर्णनां अर्थसंधानां रसानाम" के साथ 'छंद सामपि' का उल्लेख कर छंद को काव्य का अनिवार्य अंग माना है। तुलसी ने काव्य के अनुरूप छंद का प्रयोग किया है। कवितावली मुक्तकों का संग्रह है। तुलसी के पूर्व कविता के लिए अनेक पद्धतियां प्रचलित थीं। इन्होंने सभी पद्धतियों में रामकथा का गुणगान किया है। "वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति, गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्ध कबीरदास की नीति सम्बन्धी बानी की दोहा पद्धति, ईश्वरदास के दोहे-चौपाई वाली प्रबंध पद्धति आदि।" ये पांच मुख्य शैलियाँ उस वक्त प्रचलितं थीं। इनके साथ ब्रज और अवधी दो भाषाओं का व्यवहार होता था। तुलसी ने इन्हीं पांच शैलियों और दो भाषाओं को लेकर काव्य रचना की। कहीं-कहीं संस्कृत का भी प्रयोग किया है। चारणों और भाटों वाली कवित्त एवं छप्पय वाली शैली में उन्होंने कवितावली की रचना की है। कवितावली एक मुक्तक काव्य है। कवितावली के मुक्तक काव्य होने के कुछ प्रमाण मिलते हैं। प्रबंध के अनुसार कवितावली में नियमानुसार मंगलाचरण नहीं है। तुलसी ने मानस के प्रत्येक काण्ड में मंगलाचरण दिया है, किन्तु कवितावली के आरंभ में मंगलाचरण का एक ही छंद है। यह रचना प्रबंध रूप में नहीं मुक्तक रूप में है। कथा में भी एक सूत्रता नहीं है। मुक्तक काव्य के स्वरूप स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने कहा है–"मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं होती। जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है। सहृदय में एक स्थायी प्रभाव गृहीत रहता है। इससे तो रस के छींटे पड़ते हैं। जिससे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता।"

मुक्तक स्वतंत्र होते हुए भी अपने आप में स्वत: पूर्ण होते हैं। कवितावली का प्रत्येक छंद स्वतंत्र होते हुए भी अपने-आप में पूर्ण एवं भावाभिव्यंजन में पूर्णत: सफल है। छंदों की रमणीयता के लिए तुलसी ने भावों के अनुकूल छंदों का सन्निवेश किया है तथा लय और अन्त्यानुप्रास का ध्यान रखा है। वीरगाथा काल की चारणों की छप्पय शैली में कवितावली के छंदों की रचना की। छप्पय मात्रिक छंद है। छप्पय छ: पंक्तियों वाला छंद है, जो रोला और उल्लाला के संयोग से बनता है। रोला में 24मात्राएं होती हैं तथा 11 और 13 पर यति हुआ करती है। छप्पय में पहली चार पंक्तियाँ रोला की रखी जातीं हैं और अंतिम दो पंक्तियाँ उल्लाला की रखी जातीं हैं। उल्लाला में 15 और 13 पर यति होती है। कवितावली में छप्पय का प्रयोग कवि ने भाषा व भाव के अनुरूप किया है। जिसमें कवि की निपुणता झलकती है । जैसे–

डिगतिउर्विअतिगुर्वि,सर्वपब्बैसमुद्रसर।
ब्याल बधिर तेहि काल ,बिकल दिगपाल राचर॥
दिग्गयंद लरखरत ,परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिमभानु ,संघटित होत परस्पर॥
चौंके विरंचि संकर सहित ,कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रम्हांड खण्ड कियो चडधुनि,जबहिंराम सिवधनु दल्यौ॥

बालकाण्ड -11

भाटों की कवित्त–सवैया शैली का भी प्रयोग कवितावली में रामकथा कहने के लिए तुलसी ने किया है। कवित्त को घनाक्षरी और मनहरण के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 31वर्ण होते हैं 16 व 15 पर यति हुआ करती है। अंत में गुरु वर्ण का होना आवश्यक है। सवैया भी वार्णिक छंद है। वर्णों के आधार पर इसका निर्णय किया जाता है। मत्तगयन्द, दुर्मिल आदि इसके भेद हैं। कवितावली में नाना रसों का समावेश अत्यंत विशद रूप में मिलता। कवितावली में रासनुकूल शब्द योजना बड़ी सुंदर है। जो तुलसी ऐसी कोमल भाषा का प्रयोग करते हैं–

राम को रूप निहारत जानकि, कंकन के नगकी परछाहीं। . याते सबै सुधि भूलि गई ,कर टेक रही ,पल टारति नाहीं।।

बालकाण्ड -17

वे ही वीर और भयानक के प्रसंग में ऐसी शब्दावली का व्यवहार करते हैं -

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,धाए जातुधान ,हनुमान लियो घेरिकै। महाबल पुंज कुंजरारि क्यों गरजि भट,जहाँ तहां पटके लंगूर फेरि फेरिकै।। . मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात, कहैं तुलसीस 'राखि राम की सौं' टेरिकै। ठहर ठहर परे, कहरि कहरि उठै, हहरि हहरि हर सि(हँसे हेरिकै।।

बालकाण्ड- 8

छप्पय, कवित्त, झूलना और सवैया के अतिरिक्त तुलसी ने संवाद शैली का बड़ी निपुणता से प्रयोग किया है । तुलसी के संवादों में नाटकीयता का सुंदर सन्निवेश हुआ है। लक्ष्मण के संवादों में वग्विदगता तथा नाटकीयता का सुंदर समन्वय हुआ है। केवट प्रसंग, रावण और अंगद संवाद, मंदोदरी संवाद और ग्राम वधुओं से संवाद में सजीवता रोचकता और स्वाभाविकता देखने लायक होती है, जो पाठक को सम्मोहित करती है। जैसे -

पूँछत ग्रामबधू सिय सों ,कहौ, सांवरे-से सखि! रावरे को हैं। सुनि सुंदर बैन सुधारस -साने सयानी हैं जानकी जानी भली।

तिरछे करि नैन ,दे सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।

अयोध्याकाण्ड -22 -23

कवितावली में गुण, रीति और व्रतियों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उपनागरिका वृति अत्यंत मधुर और कोमल वर्ण योजना में झलकती है। इसमें माधुर्य गुण भी रहता है। कवितावली में अनेक स्थलों पर माधुर्य गुण मिलता है। बालकाण्ड के प्रारंभिक पदों अयोध्याकाण्ड में माधुर्य गुण विशेष रूप से देखा जा सकता है। श्रृंगार रस के प्रसंगों में तो अनेक बार माधुर्य गुण का सहज समावेश मिलता है। कई स्थलों पर गतिशील सौन्दर्य -वर्णन भी माधुर्य गुण से परिपूर्ण है। जैसे –

दूलहश्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावतिगीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरिबिप्र पढ़ाहीं।।

बालकाण्ड 17

पुरुषावृति कठोर वर्ण योजना में अन्तर्निहित होती है। यह ओज गुण संपन्न होती है। जहाँ-जहाँ रौद्र ,वीर और भयानक रसों का वर्णन हो वहां सहज हीं ओज गुण का समावेश हो जाता है। सुन्दरकाण्ड के लंकादहन प्रसंग में अधिक हुआ है-

कैंधों व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु।
वीररस बीर तरवारि सो उघारी है।

सुन्दरकाण्ड -5

कोमलवृति में न कठोर ,न कोमल वर्णों की योजना होती है। उसमें प्रसाद गुण निहित है। कुछ स्थलों को छोड़कर कवितावली में सर्वत्र ही प्रसाद गुण को देखा जा सकता है।

तुलसी की काव्य कला के सम्बन्ध में रामचंद्र तिवारी ने लिखा है कि–"उन्हें काव्य शास्त्र के विविध अंगों का पूर्ण ज्ञान था किन्तु इनका प्रदर्शन उनका ध्येय नहीं था। उन्होंने वर्ण्य-विषय को दृष्टि में रखकर उसके अनुकूल ही छंदों का प्रयोग किया है। उनका एक मात्र उद्देश्य अभिव्यक्ति की पूर्णता है। भाषा, शैली, छंद, गुण, रीति, अलंकार, उक्ति दृवैचित्र्य ये सभी उसकी पूर्णता में सहायक हैं।"

8

गोस्वामी तुलसीदास और उनकी साहित्य साधना

गोस्वामी तुलसीदास की लेखनी पावन गंगाजल के समान मोक्ष प्रदान करने वाली है। जिन्होंने वैदिक व आध्यत्मिक धर्म दर्शन के गूढ विषय को ऐसे सहज लोकग्राह्य रूप में प्रस्तुत किया कि आज सारा हिन्दू समाज उनके द्वारा स्थापित रामदर्शन को अपनी पहचान व आस्था का प्रतीक मानने लगा है।

'सियाराम मय सब जग जानी' की अनुभूति करने वाले तुलसीदास ने जीवन और जगत की उपेक्षा न करके 'भनिति' को 'सुरसरि सम सब कर हित' करने वाला माना। भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले महाकवि तुलसी का आविर्भाव ऐसे विषम वातावरण में हुआ जब सारा समाज विच्छिन्न, वि श्रृखल, लक्ष्यहीन व आदर्श हीन हो रहा था। लोकदर्शी तुलसी ने तत्कालीन समाज की पीड़ा, प्रताड़ना से तादात्म्य स्थापित कर उसका सच्चा प्रतिबिम्ब अपनी रचनाओं में उपस्थित किया। साधनहीन, अभावग्रस्त, दीन-हीन जाति का उद्धार असुर संहारक धर्मधुरिन कलि कलुष विभंजन राम का मर्यादित दिव्य लोकानुप्रेरक चरित्र ही कर सकता था, इसीलिए उन्होंने तंद्राग्रस्त समाज के उद्‌बोधन के लिए लोकग्राह्य पद्धति को आधार बनाकर मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लोकोपकारी व कल्याणकारी चरित्र का आदर्श प्रस्तुत कर अध्यात्म और धर्म को जीवन में उतारने का वन्दनीय कार्य किया। करुणायत, सुखमंदिर, गुणधाम श्री राम के

'मंगलभवन अमंगलहारी ' रूप के सान्निध्य में सृष्टि के प्राणी मात्र, जड़ प्रकृति तथा अमगंलजनक असत् प्रवृत्तियाँ सात्विक व मंगलमयी बन जाती है। ऐसे 'लोकमंगल के विधान श्री राम से जुड़कर सभी तत्त्व स्वत: ही मंगलमयी हो जाते है, अत: उनका स्मरण सर्वत्र ही शुभता की सृष्टि करने वाला है और उनकी लोक मंगल विधायिनी कथा भारतीय राष्ट्रीय परम्परा की परम भव्य और मंगलमय गाथा है।

युगदृष्टा कवि तुलसी ने बड़ी निर्भीकता से तत्कालीन शासकों की दुर्नीति, स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति, निरंकुश शासन एवं तज्जनित जनता की संत्रस्त दशा तथा आ आर्थिकहीनता का वर्णन कर आर्थिक वैषम्य की आड़ में पनप रहे सामाजिक विद्रोह की ओर संकेत किया:-

'ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी
तुलसी बुझाइ एक राम घनष्याम ही ते,
आगि बड़वागि ते बड़ी है आग पेट की॥

तुलसी की उपरोक्त पंक्ति उस कटु सामाजिक सत्य को उद्घाटित करती है जिसकी भीषणता में आज सारा विश्व भुन रहा है। उनकी मंगलमयी दृष्टि का मूल था- भेदभाव से शून्य साम्यवादी समाज की स्थापना। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। सौन्दर्य का यह उद्घाटन असौन्दर्य का आवरण हटाकर होता है।

तुलसी ने अपनी इसी लोकमांगलिक दृष्टि द्वारा जनमानस की नैसर्गिक जीवन की अभिव्यक्ति को लोक कल्याणार्थ सहज व आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। जनता के गिरते नैतिक स्तर को उठाने के लिए उन्होनें श्री राम के दिव्य चरित्र व शील स्थापना के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ज्ञापित की। समाज की आवश्य कतानुसार लोकाराधन के व्रती उपास्य के उपासक तुलसी ने ऐसी संतुलित लोकदृष्टि अपनायी, जिसने समाज में व्याप्त बुध और अबुध दोनों का सामीप्य प्राप्त कर लोकाराधन रूप की प्रतिष्ठा की। सत्य, धर्म, न्याय, मर्यादा, सुनीति, विवेक और आचरण जैसे मूल्यों की प्रतिस्थापना के प्रति तुलसी सदैव सचेत रहे। अपनी विशाल समन्वयकारी बुद्धि का सदुपयोग कर लोकदर्शी तुलसी ने मानस में समन्वय का जो आदर्श प्रस्तुत किया, वह अविस्मरणीय है। सगुण साकार राम में गुण और रूप का, शक्ति, शील और सौन्दर्य का अनुपम समन्वय उनकी लोक

कल्याणकारी भावना का ही प्रमाण है। मध्यम मार्ग को अपनाते हुए तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा को आवश्यक मान 'केवट प्रसंग' द्वारा भक्ति के क्षेत्र में ब्राह्मण और शूद्र को समान स्थान दिया। भक्ति की रक्षा हेतु उन्होने 'सरजू नाम सुमंगल मूला, लोकवेद मत मंजुल कूला' वाली सरिता द्वारा आत्मपक्ष और लोकपक्ष में एकात्मकता स्थापित कर समाज के उन्नयन का प्रयास किया। सगुण-निर्गुण, विद्या-अविद्या, माया-प्रकृति, शैव-वैष्णव, प्रवृति-निवृति, भोग और त्याग का समन्वित रूप राम के चरित्र में दिखाकर धर्म के अति सहज मार्ग की नींव रखी।

प्रतिभा शाली कवि तुलसी ने भारतीय संस्कृति एवं युग जीवन का विशद् प्रतिबिम्ब और सर्वोदय राम राज्य की स्थापना का महान संदेश अवधपति राम के माध्यम से प्रस्तुत किया। 'नहि दरिद्र कोउ दु:खी न दीना' के माध्यम से तुलसी ने राम राज्य का लोक कल्याणकारी रूप वर्णित करके उसे युग-युग के लिए एक प्रेरणास्पद आदर्श बना दिया। 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, ते नर अवसि नरक अधिकारी' के प्रति वह सदैव सचेत रहे। इस प्रकार सरल स्वभाव वाले सात्विक गुणों के पूंजीभूत रूप श्री राम सृष्टि रूप में शुभ का प्रतीक बन गए।

'जे चेतन कर जड़ करे, जड़हि करै चौतन्य।'

कृपालु श्री हरि विष्णु के रामावतार के पीछे उनका एकमात्र उद्देश्य जनमानस में भव्य भावों और विचारों की प्रतिष्ठा द्वारा आदर्श समाज की स्थापना था। ब्रह्मनन्द सहोदय श्री राम के प्रत्येक कार्य लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित हैं। वह उदात्त ज्ञानात्मक मूल्यों और आचरणगत व्यवहारिक क्रियाकलापों का मणिकांचन योग है। 'जगमंगल गुनग्राम राम के' कहकर तुलसी ने सम्पूर्ण प्राणी मात्र चर, अचर, सज्जन, दुर्जन के कल्याण की कामना की है।

'मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक' कहकर उन्होंने राजा के आदर्श तथा प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के मूल तत्त्व को प्रस्तुत किया। लोकरंजन और लोकमंगल के सिद्धान्त पर आधारित उनके राम राज्य में दण्ड नीति और भेद-नीति का पूर्णत: अभाव था। उनका राम राज्य, सामुदायिक कल्याण का आदर्श रूप है। मन, वचन, कर्म से पवित्र भारतीय संस्कृति के साक्षात् स्वरूप श्रीराम ने समस्त भारतवर्ष को इस प्रकार सुशृखंलित कर दिया कि आज तक उनके आदर्श राम राज्य की गाथा गायी जाती है। जीवन रूपी संग्राम में सत्वृतियों के प्रतीक तुलसी के आराध्य जिस धर्म रथ पर आसीन है उसकी विजय निश्चित है-

'सौरज धीरज तेहि रथ यात्र, सत्य शील दृढ़ध्वजा पताका'।

तुलसी साहित्य में शिष्ट संस्कृति व लोक संस्कृति दोनों का श्रेष्ठ सम्मिलन है, जहाँ एक ओर उन्होंने शिष्ट संस्कृति द्वारा आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना की, वही लोक संस्कृति द्वारा जीवन को गहराई से समझने का आधार दिया। विराट् भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हुए तुलसी ने मानवीय एकता, समता, विश्व-बन्धुत्व, आपसी भाईचारे की स्थापना कर अभिजात्य पात्रों को प्रकृत रूप में प्रस्तुत किया। मानव जीवन की गहन आस्थाओं व अनुभूतियों के प्रतीक रीति-रिवाजों व पावन संस्कारों के अतिरिक्त तुलसी साहित्य में समाविष्ट विविध देवी-देवताओं की मंगल पूजा, व्रत, उपासना, ज्ञान, कर्म, भाग्य, ज्योतिष आदि विषयों की गूढ़ चर्चा हमें अपनी भारतीय संस्कृति का बोध कराकर स्थिति शील व विकासशील बनाती है। 'घाट मनोहर चारि' के माध्यम से उन्होंने श्रेष्ठ संवाद रूपी चार घाटों का निर्माण करके राजाराम की अलौकिक कथा को अनुपम कलेवर में बाँधकर पावन गंगा के समान पूज्यनीय बना दिया। उन्होंने सारी समस्याओं का निदान भक्ति में माना है, जिसके सान्निध्य में सब कुछ सत्य शिव और सुन्दर हो जाता है।

नारी की शुचिता व पवित्रता की रक्षा करना उनकी मर्यादावाद का एक अभिन्न अंग है। सम्पूर्ण तुलसी साहित्य में प्रेम भाव के वर्णन में चाहे कितनी रसमयता, गहनता व शृंगारिकता क्यों न हो, नारी की गरिमा व रिश्तों की मर्यादा के प्रति पूर्ण सचेतता बरती गयी है।

तुलसी ने दरिद्रता, दुःख, पीड़ा, कष्ट से टूटते समाज की मंगलाशा व भक्ति को आधार बनाकर जीने का शुभ संकल्प दिया। तेजी से बदलते कालचक्र के परिणामस्वरूप अतिआधुनिकता के कारण जहां आज मानव का अस्तित्त्व ही संकट में पड़ गया है वही ऐसी स्थिति में तुलसी साहित्य जीवन रक्षक संजीवनी के समान निर्जीव प्राणियों में चेतना का संचार कर रहा है। उनके साहित्य में काव्य कौशल और लोकमंगल की चरम परिणति है, जो मुक्तामणि के समान सुन्दर और मूल्यवान है। गोस्वामी जी के ईष्वरावतार राम हमारे बीच ईश्वरता दिखाने नहीं आए थे, मनुष्यता दिखाने आए थे, वह मनुष्यता जिसकी हमारे समाज को आवश्कता थी, है और हमेशा रहेगी।

निष्कर्षतः तुलसी ने लोक में व्याप्त अन्याय, अत्याचार, अनाचार, पाखण्ड की धज्जियाँ उड़ाकर जिस सियाराम के लोकपावन अमृतमयी यश का गान किया, वह मार्तण्ड के समान भटके हुए राहगीरों को राह दिखाने वाला है।

भारतीय संस्कृति के संरक्षण तथा सामाजिक मर्यादा का आदर्श स्थापित करने में तुलसीदास का योगदान अप्रतिम है। राम काव्य के एक छत्र सम्राट गोस्वामी जी के काव्य में जो मार्मिकता, भाव प्रवणता, विशदता व्यवस्थापकता, गुरूत्व-गाम्भीर्यता व उदारता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

वाक्य-ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई॥

9

श्रीरामचरितमानस

श्री रामचरितमानस अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 16वीं सदी में रचित एक महाकाव्य है। इस ग्रन्थ को अवधी साहित्य (हिंदी साहित्य) की एक महान कृति माना जाता है। इसे सामान्यत: 'तुलसी रामायण' या 'तुलसीकृत रामायण' भी कहा जाता है। रामचरितमानस भारतीय संस्कृति में एक विशेष स्थान रखता है। रामचरितमानस की लोकप्रियता अद्वितीय है। उत्तर भारत में 'रामायण' के रूप में बहुत से लोगों द्वारा प्रतिदिन पढ़ा जाता है। शरद नवरात्रि में इसके सुन्दर काण्ड का पाठ पूरे नौ दिन किया जाता है। रामायण मण्डलों द्वारा मंगलवार और शनिवार को इसके सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है।

श्री रामचरितमानस के नायक श्रीराम हैं जिनको एक मर्यादा पुरोषोत्तम के रूप में दर्शाया गया है, जोकि अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीहरि नारायण भगवान के अवतार है जबकि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में श्री राम को एक आदर्श चरित्र मानव के रूप में दिखाया गया है। जो सम्पूर्ण मानव समाज ये सिखाता है जीवन को किस प्रकार जिया जाए भले ही उसमें कितने भी विघ्न हों तुलसी के प्रभु राम सर्वशक्तिमान होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। गोस्वामी जी ने रामचरित का अनुपम शैली में दोहों, चौपाइयों, सोरठों तथा छंद का आश्रय लेकर वर्णन किया है।

रामचरितमानस 15वीं शताब्दी के कवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखा गया महाकाव्य है, जैसा कि स्वयं गोस्वामी जी ने रामचरित मानस के बालकाण्ड

में लिखा है कि उन्होंने रामचरितमानस की रचना का आरम्भ अयोध्या में विक्रम संवत् 1631 (1574 ईस्वीं) को रामनवमी के दिन (मंगलवार) किया था। गीताप्रेस गोरखपुर के श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के अनुसार रामचरितमानस को लिखने में गोस्वामी तुलसीदास जी को 2 वर्ष 7 माह 26 दिन का समय लगा था और उन्होंने इसे संवत् 1633 (1576 ईस्वीं) के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम विवाह के दिन पूर्ण किया था। इस महाकाव्य की भाषा अवधी है।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने श्री रामचन्द्र के निर्मल एवं विशद् चरित्र का वर्णन किया है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत रामायण को रामचरितमानस का आधार माना जाता है। यद्यपि रामायण और रामचरितमानस दोनों में ही राम के चरित्र का वर्णन है परंतु दोनों ही महाकाव्यों के रचने वाले कवियों की वर्णन शैली में उल्लेखनीय अन्तर है। जहाँ वाल्मीकि ने रामायण में राम को केवल एक सांसारिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया है वहीं तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम को भगवान विष्णु का अवतार माना है।

रामचरितमानस को तुलसीदास ने सात काण्डों में विभक्त किया है। इन सात काण्डों के नाम हैं - बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड (युद्धकाण्ड) और उत्तर काण्ड। छन्दों की संख्या के अनुसार बाल काण्ड और किष्किन्धा काण्ड क्रमशः सबसे बड़े और छोटे काण्ड हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में अवधी के अलंकारों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है विशेषकर अनुप्रास अलंकार का। रामचरितमानस पर प्रत्येक हिंदू की अनन्य आस्था है और इसे हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है।

संक्षिप्त मानस कथा

बात उस समय की है जब मनु और सतरूपा परमब्रह्म की तपस्या कर रहे थे। कई वर्ष तपस्या करने के बाद शंकर जी ने स्वयं पार्वती से कहा कि ब्रह्मा, विष्णु और मैं कई बार मनु और सतरूपा के पास वर देने के लिये आये ('बिधि हरि हर तप देखि अपारा, मनु और समीप आये बहु बारा') और कहा कि जो वर तुम माँगना चाहते हो माँग लो, पर मनु सतरूपा को तो पुत्र रूप में स्वयं परमब्रह्म को ही माँगना था, फिर ये कैसे उनसे यानि शंकर, ब्रह्मा और विष्णु से वर माँगते? हमारे प्रभु श्रीराम तो सर्वज्ञ हैं। वे भक्त के हृदय की अभिलाषा को स्वतः ही जान लेते हैं। जब 23 हजार वर्ष और बीत गये तो प्रभु श्रीराम के द्वारा आकाशवाणी होती है-

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी, गति अनन्य तापस नृप रानी।
माँगु माँगु बरु भइ नभ बानी, परम गँभीर कृपामृत सानी।।

इस आकाशवाणी को जब मनु सतरूपा सुनते हैं तो उनका हृदय फ्रुल्लित हो उठता है और जब स्वयं परमब्रह्म राम प्रकट होते हैं तो उनकी स्तुति करते हुए मनु और सतरूपा कहते हैं- 'सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू, बिधि हरि हर बंदित पद रेनू। सेवत सुलभ सकल सुखदायक, प्रणतपाल सचराचर नायकघ' अर्थात् जिनके चरणों की वन्दना विधि, हरि और हर यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही करते है, तथा जिनके स्वरूप की प्रशंसा सगुण और निर्गुण दोनों करते हैं– उनसे वे क्या वर माँगें? इस बात का उल्लेख करके तुलसीदास ने उन लोगों को भी राम की ही आराधना करने की सलाह दी है, जो केवल निराकार को ही परमब्रह्म मानते हैं।

अध्याय

1. बालकाण्ड
2. अयोध्याकाण्ड
3. अरण्यकाण्ड
4. किष्किन्धाकाण्ड
5. सुन्दरकाण्ड
6. लंकाकाण्ड (युद्धकाण्ड)
7. उत्तरकाण्ड
8. भाषा–शैली।

रामचरितमानस की भाषा के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई इसे अवधी मानता है तो कोई भोजपुरी। कुछ लोक मानस की भाषा अवधी और भोजपुरी की मिली–जुली भाषा मानते हैं। मानस की भाषा बुंदेली मानने वालों की संख्या भी कम नहीं।

गोस्वामी जी ने भाषा को नया स्वरूप दिया। यह अवधी नहीं अपितु वही भाषा थी जो प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश होते हुए, 15 दशकों तक समस्त भारत की साहित्यिक भाषा रही ब्रजभाषा के नए रूप मागधी, अर्द्धमागधी आदि से सम्मिश्र होकर आधुनिक हिन्दी की ओर बढ़ रही थी, जिसे 'भाखा' कहा गया एवं जो आधुनिक हिन्दी 'खड़ी–बोली' का पूर्व रूप थी।

तुलसीदास 'ग्राम्य गिरा' के पक्षधर थे परन्तु वे जायसी की गँवारू भाषा अवधी के पक्षधर नहीं थे। तुलसीदास की तुलना में जायसी की अवधी अधिक शुद्ध है। स्वयं गोस्वामी जी के अन्य अनेक ग्रन्थ जैसे 'पार्वतीमंगल' तथा 'जानकीमंगल' अच्छी अवधी में है। गोस्वामी जी संस्कृत के भी विद्वान् थे, इसलिए संस्कृत व आधुनिक शुद्ध हिन्दी खड़ीबोली का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप में हुआ है।

चित्रकूट स्थित अन्तरराष्ट्रीय मानस अनुसंधान केन्द्र के प्रमुख स्वामी रामभद्राचार्य ने रामचरितमानस का सम्पादन किया है। स्वामी जी ने लिखा है कि रामचरितमानस के वर्तमान संस्करणों में कर्तृवाचक उकार शब्दों की बहुलता हैं। उन्होंने इसे अवधी भाषा की प्रकृति के विरुद्ध बताया है। इसी प्रकार उन्होंने उकार को कर्मवाचक शब्द का चिन्ह मानना भी अवधी भाषा के विपरीत बताया है। स्वामीजी अनुनासिकों को विभक्ति को द्योतक मानने को भी असंगत बताते हैं- 'जब तें राम ब्याहि घर आये'। कुछ अपवादों को छोड़कर अनावश्यक उकारान्त कर्तृवाचक शब्दों के प्रयोग को स्वामी रामभद्राचार्य ने अवधी भाषा के विरुद्ध बताया है। स्वामी रामभद्रचार्य ने 'न्ह' के प्रयोग को भी अनुचित और अनावश्यक बताया है। उनके अनुसार नकार के साथ हकार जोड़ना ब्रजभाषा का प्रयोग है अवधी का नहीं। स्वामी जी के अनुसार मानस की उपलब्ध प्रतियों में तुम के स्थान पर 'तुम्ह' और 'तुम्हहि' शब्दों के जो प्रयोग मिलते हैं वे अवधी में नहीं होते। इसी प्रकार 'श' न तो प्राचीन अवधी की ध्वनि है और न ही आधुनिक अवधी की।

रामचरितमानस तुलसीदास की सबसे प्रमुख कृति है। इसकी रचना संवत् 1631 ई. की रामनवमी को अयोध्या में प्रारम्भ हुई थी किन्तु इसका कुछ अंश काशी (वाराणसी) में भी निर्मित हुआ था, यह इसके किष्किन्धा काण्ड के प्रारम्भ में आने वाले एक सोरठे से निकलती है, उसमें काशी सेवन का उल्लेख है। इसकी समाप्ति संवत 1633 ई. की मार्गशीर्ष, शुक्ल, रविवार को हुई थी किन्तु उक्त तिथि गणना से शुद्ध नहीं ठहरती, इसलिए विश्वसनीय नहीं कही जा सकती। यह रचना अवधी बोली में लिखी गयी है। इसके मुख्य छन्द चौपाई और दोहा हैं, बीच-बीच में कुछ अन्य प्रकार के भी छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्राय: 8 या अधिक अर्द्धलियों के बाद दोहा होता है और इन दोहों के साथ कड़वक संख्या दी गयी है। इस प्रकार के समस्त कड़वकों की संख्या 1074 है।

रामचरितमानस चरित-काव्य

'रामचरितमानस' एक चरित-काव्य है, जिसमें राम का सम्पूर्ण जीवन-चरित वर्णित हुआ है। इसमें 'चरित' और 'काव्य' दोनों के गुण समान रूप से मिलते हैं। इस काव्य के चरितनायक कवि के आराध्य भी हैं, इसलिए वह 'चरित' और 'काव्य' होने के साथ-साथ कवि की भक्ति का प्रतीक भी है। रचना के इन तीनों रूपों में उसका विवरण इस प्रकार है-

संक्षिप्त कथा

'रामचरितमानस' की कथा संक्षेप में इस प्रकार है-

दक्षों से लंका को जीतकर राक्षसराज रावण वहाँ राज्य करने लगा। उसके अनाचारों-अत्याचारों से पृथ्वी त्रस्त हो गयी और वह देवताओं की शरण में गयी। इन सब ने मिलकर हरि की स्तुति की, जिसके उत्तर में आकाशवाणी हुई कि हरि दशरथ-कौशल्या के पुत्र राम के रूप में अयोध्या में अवतार ग्रहण करेंगे और राक्षसों का नाश कर भूमि-भार हरण करेंगे। इस आश्वासन के अनुसार चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमी को हरि ने कौशल्या के पुत्र के रूप में अवतार धारण किया। दशरथ की दो रानियाँ और थीं- कैकेयी और सुमित्रा। उनसे दशरथ के तीन और पुत्रों-भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने जन्म ग्रहण किया।

विश्वामित्र के आश्रम में राम

इस समय राक्षसों का अत्याचार उत्तर भारत में भी कुछ क्षेत्रों में प्रारम्भ हो गया था, जिसके कारण मुनि विश्वामित्र यज्ञ नहीं कर पा रहे थे। उन्हें जब यह ज्ञात हुआ कि दशरथ के पुत्र राम के रूप में हरि अवतरित हुए हैं, वे अयोध्या आये और जब राम बालक ही थे, उन्होंने राक्षसों के दमन के लिए दशरथ से राम की याचना की। राम तथा लक्ष्मण की सहायता से उन्होंने अपना यज्ञ पूरा किया। इन उपद्रवकारी राक्षसों में से एक सुबाहु था, जो मारा गया और दूसरा मारीच था, जो राम के बाणों से आहत होकर सौ योजन की दूरी पर समुद्र के पार चला गया। जिस समय राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में रह रहे थे, मिथिला में धनुर्यज्ञ का आयोजन किया गया था, जिसके लिए मुनि को निमन्त्रण प्राप्त हुआ, अतः मुनि राम-लक्ष्मण को लेकर मिथिला गये। मिथिला के राजा जनक ने देश-विदेश के समस्त राजाओं को अपनी पुत्री सीता के स्वयंवर हेतु आमन्त्रित किया था। रावण और बाणासुर जैसे बलशाली राक्षस नरेश भी इस

आमन्त्रण पर वहाँ गये थे किन्तु अपने को इस कार्य के लिए असमर्थ मानकर लौट चुके थे। दूसरे राजाओं ने सम्मिलित होकर भी इसे तोड़ने का प्रयत्न किया, किन्तु वे अकृत कार्य रहे। राम ने इसे सहज ही तोड़ दिया और सीता का वरण किया। विवाह के अवसर पर अयोध्या निमन्त्रण भेजा गया। दशरथ अपने शेष पुत्रों के साथ बारात लेकर मिथिला आये और विवाह के अनन्तर अपने चारों पुत्रों को लेकर अयोध्या लौटे।

कैकेयी और कोपभवन

दशरथ की अवस्था धीरे-धीरे ढलने लगी थी, इसलिए उन्होंने राम को अपना युवराज पद देना चाहा। संयोग से इस समय कैकेयी-पुत्र भरत, सुमित्रा-पुत्र शत्रुघ्न के साथ ननिहाल गये हुए थे। कैकेयी की एक दासी मन्थरा को जब यह समाचार ज्ञात हुआ, उसने कैकेयी को सुनाया। पहले तो कैकेयी ने यह कहकर उसका अनुमोदन किया कि पिता के अनेक पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है, यह उसके राजकुल की परम्परा है, किन्तु मन्थरा के यह सुझाने पर कि भरत की अनुपस्थिति में जो यह आयोजन किया जा रहा है, उसमें कोई दुरभि-सन्धि है, कैकेयी ने उस आयोजन को किल बनाने का निश्चय किया और कोप भवन में चली गयी। तदनन्तर उसने दशरथ से, उनके मनाने पर, दो वर देने के लिए वचन, एक से राम के लिए 14 वर्षों का वनवास और दूसरे से भरत के लिए युवराज पद माँग लिये। इनमें से प्रथम वचन के अनुसार राम ने वन के लिए प्रस्थान किया तो उनके साथ सीता और लक्ष्मण ने भी वन के लिए प्रस्थान किया।

कुछ ही दिनों बाद जब दशरथ ने राम के विरह में शरीर त्याग दिया, भरत ननिहाल से बुलाये गये और उन्हें अयोध्या का सिंहासन दिया गया, किन्तु भरत ने उसे स्वीकार नहीं किया और वे राम को वापस लाने के लिए चित्रकूट जा पहुँचे, जहाँ उस समय राम निवास कर रहे थे किन्तु राम ने लौटना स्वीकार न किया। भरत के अनुरोध पर उन्होंने अपनी चरण-पादुकाएँ उन्हें दे दीं, जिन्हें अयोध्या लाकर भरत ने सिंहासन पर रखा और वे राज्य का कार्य देखने लगे। चित्रकूट से चलकर राम दक्षिण के जंगलों की ओर बढ़े। जब वे पंचवटी में निवास कर रहे थे रावण की एक भगिनी शूर्पणखा एक मनोहर रूप धारण कर वहाँ आयी और राम के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनसे विवाह का प्रस्ताव किया। राम ने जब इसे अस्वीकार किया तो उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। यह

देखकर राम के संकेतों से लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। इस प्रकार कुरूप की हुई शूर्पणखा अपने भाइयों-खर और दूषण के पास गयी और उन्हें राम से युद्ध करने को प्रेरित किया। खर-दूषण ने अपनी सेना लेकर राम पर आक्रमण कर दिया किन्तु वे अपनी समस्त सेना के साथ युद्ध में मारे गये। तदनन्तर शूर्पणखा रावण के पास गयी और उसने उसे सारी घटना सुनायी। रावण ने मारीच की सहायता से, जिसे विश्वामित्र के आश्रम में राम ने युद्ध में आहत किया था, सीता का हरण किया, जिसके परिणामस्वरूप राम को रावण से युद्ध करना पड़ा।

राम और रावण युद्ध

इस परिस्थिति में राम ने किष्किन्धा के वानरों की सहायता ली और रावण पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के साथ रावण का भाई विभीषण भी आकर राम के साथ हो गया। राम ने अंगद नाम के वानर को रावण के पास दूत के रूप में अन्तिम बार सावधान करने के लिए भेजा कि वह सीता को लौटा दे, किन्तु रावण ने अपने अभिमान के बल से इसे स्वीकार नहीं किया और राम तथा रावण के दलों में युद्ध छिड़ गया। उस महायुद्ध में रावण तथा उसके बन्धु-बान्धव मारे गये। तदनन्तर लंका का राज्य उसके भाई विभीषण को देकर सीता को साथ लेकर राम और लक्ष्मण अयोध्या वापस आये। राम का राज्याभिषेक किया गया और दीर्घकाल तक उन्होंने प्रजारंजन करते हुए शासन किया। इस मूल कथा के पूर्व 'रामचरितमानस' में रावण के कुछ पूर्वभवों की तथा राम के कुछ पूर्ववर्ती अवतारों की कथाएँ हैं, जो संक्षेप में दी गयी है। कथा के अन्त में गरुड़ और काग भुशुण्डि का एक विस्तृत संवाद है, जिसमें अनेक प्रकार के आध्यात्मिक विषयों का विवेचन हुआ है। कथा के प्रारम्भ होने के पूर्व शिव-चरित, शिव-पार्वती संवाद, याज्ञवलक्य-भारद्वाज संवाद तथा काग भुशुण्डि-गरुड़ संवाद के रूप में कथा की भूमिकाएँ हैं। और उनके भी पूर्व कवि की भूमिका और प्रस्तावना है।

रामचरितमानस

'चरित' की दृष्टि से यह रचना पर्याप्त सफल हुई है। इसमें राम के जीवन की समस्त घटनाएँ आवश्यक विस्तार के साथ एक पूर्वाकार की कथाओं से लेकर राम के राज्य-वर्णन तक कवि ने कोई भी प्रासंगिक कथा रचना में नहीं आने दी है। इस सम्बन्ध में यदि वाल्मीकीय तथा अन्य अधिकतर राम-कथा

ग्रन्थों से 'रामचरितमानस' की तुलना की जाये तो तुलसीदास की विशेषता प्रमाणित होगी। अन्य रामकथा ग्रन्थों में बीच-बीच में कुछ प्रासंगिक कथाएँ देखकर अनेक क्षेपककारों ने 'रामचरितमानस' में प्रक्षिप्त प्रसंग रखे और कथाएँ मिलायीं, किन्तु राम-कथा के पाठकों ने उन्हें स्वीकार नहीं किया और वे रचना को मूल रूप में ही पढ़ते और उसका पारायण करते हैं। चरित-काव्यों की एक बड़ी विशेषता उनकी सहज और प्रयासहीन शैली मानी गयी है, और इस दृष्टि से 'मानस' एक अत्यन्त सफल चरित है। रचना भर में तुलसीदास ने कहीं भी अपना काव्य कौशल, अपना पाण्डित्य, अपनी बहुज्ञता आदि के प्रदर्शन का कोई प्रयास नहीं किया है। सर्वत्र वे अपने वर्ण्य विषय में इतने तन्मय रहे हैं कि उन्हें अपना ध्यान नहीं रहा। रचना को पढ़कर ऐसा लगता है कि राम के चरित ने ही उन्हें वह वाणी प्रदान की है, जिसके द्वारा वे सुन्दर कृति का निर्माण कर सके।

उत्कृष्ट महाकाव्य

'काव्य' की दृष्टि से 'रामचरितमानस' एक अति उत्कृष्ट महाकाव्य है। भारतीय साहित्य-शास्त्र में 'महाकाव्य' के जितने लक्षण दिये गये हैं, वे उसमें पूर्ण रूप से पाये जाते हैं। जैसें–

1. कथा-प्रबन्ध का सर्गबद्ध होना ,
2. उच्चकुल सम्भूत धीरोदात्त नायक का होना,

श्रृंगार, शान्त और वीर रसों में से किसी एक का उसका लक्ष्य होना आदि सभी लक्षण उसमें मिलते हैं। पाश्चात्य साहित्यालोचन में 'इपिक' की जो विभिन्न आवश्यकताएँ बतलायी गयी हैं, यथा- उसकी कथा का किसी गौरवपूर्ण अतीत से सम्बद्ध होना, अतिप्राकृत शक्तियों का उसकी कथा में भाग लेना, कथा के अन्त में किन्हीं आदर्शों की विजय का चित्रित होना आदि, सभी 'रामचरितमानस' में पाई जाती हैं। इस प्रकार किसी भी दृष्टि से देखा जाये तो 'रामचरितमानस' एक अत्यन्त उत्कृष्ट महाकाव्य ठहरता है। मुख्यत: यही कारण है कि संसार की महान् कृतियों में इसे भी स्थान मिला है।

रामचरितमानस में छन्दों की संख्या

रामचरितमानस में विविध छन्दों की संख्या निम्नवत् है-

1. चौपाई–9388
2. दोहा–1172
3. सोरठा –87

श्लोक–47 (अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, वंशस्थ, उपजाति, प्रमाणिका, मालिनी, स्त्रग्धरा, रथोद्धता, भुजङ्गप्रयात, तोटक)

छन्द–208 (हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभङ्गी, तोमर)

कुल 10902 (चौपाई, दोहा, सोरठा, श्लोक, छन्द)

तुलसीदास की भक्ति

तुलसीदास की भक्ति की अभिव्यक्ति भी इसमें अत्यन्त विशद् रूप में हुई है। अपने आराध्य के सम्बन्ध में उन्होंने 'रामचरितमानस' और 'विनय-पत्रिका' में अनेक बार कहा है कि उनके राम का चरित्र ही ऐसा है कि जो एक बार उसे सुन लेता है, वह अनायास उनका भक्त हो जाता है। वास्तव में तुलसीदास ने अपने आराध्य के चरित्र की ऐसी ही कल्पना की है। यही कारण है कि इसने समस्त उत्तरी भारत पर सदियों से अपना अद्भुत प्रभाव डाल रखा है और यहाँ के आध्यात्मिक जीवन का निर्माण किया है। घर-घर में 'रामचरितमानस' का पाठ पिछली साढ़े तीन शताब्दियों से बराबर होता आ रहा है। और इसे एक धर्म ग्रन्थ के रूप में देखा जाता है। इसके आधार पर गाँव-गाँव में प्रतिवर्ष रामलीलाओं का भी आयोजन किया जाता है। फलतः जैसा विदेशी विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। उत्तरी भारत का यह सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है और इसने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उच्चाशयता लाने में सफलता प्राप्त की है।

लोकप्रिय ग्रन्थ

यहाँ पर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि तुलसीदास ने राम तथा उनके भक्तों के चरित्र में ऐसी कौन-सी विलक्षणता उपस्थित की है, जिससे उनकी इस कृति को इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। तुलसीदास की इस रचना में अनेक दुर्लभ गुण हैं, किन्तु कदाचित् अपने जिस महान् गुण के कारण इसने यह असाधारण सम्मान प्राप्त किया है, वह है ऐसी मानवता की कल्पना, जिसमें उदारता, क्षमा, त्याग, निवैरता, धैर्य और सहनशीलता आदि सामाजिक शिवत्व के गुण अपनी पराकाष्ठा के साथ मिलते हों और फिर भी जो अव्यावहारिक न हों। 'रामचरितमानस' के सर्वप्रमुख चरित्र-राम, भरत, सीता आदि इसी प्रकार के हैं। उदाहरण के लिए राम और कौशल्या के चरित्रों को देखते हैं-

'वाल्मीकि रामायण' में राम जब वनवास का दुःखी संवाद सुनाने कौशल्या के पास आते हैं, वे कहते हैं– 'देवि, आप जानती नहीं हैं, आपके लिए, सीता

के लिए और लक्ष्मण के लिए बड़ा भय आया है, इससे आप लोग दु:खी होंगे। अब मैं दण्डकारण्य जा रहा हूँ, इससे आप लोग दुखी होंगे। भोजन के निमित्त बैठने के लिए रखे गये इस आसन से मुझे क्या करना है? अब मेरे लिए कुशा आसन चाहिये, आसन नहीं। निर्जन वन में चौदह वर्षों तक निवास करूँगा। अब मैं कन्द मूल फल से जीविका चलाऊँगा। महाराज युवराज का पद भरत को दे रहे हैं और तपस्वी वेश में मुझे अरण्य भेज रहे हैं' ।

'अध्यात्म रामायण' में राम ने इस प्रसंग में कहा है, 'माता मुझे भोजन करने का समय नहीं है, क्योंकि आज मेरे लिए यह समय शीघ्र ही दण्डकारण्य जाने के लिए निश्चित किया गया है। मेरे सत्य-प्रतिज्ञ पिता ने माता कैकेयी को वर देकर भरत को राज्य और मुझे अति उत्तम वनवास दिया। वहाँ मुनि वेश में चौदह वर्ष रहकर मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें।'

'रामचरितमानस' में यह प्रसंग इस प्रकार है-

'मातृ वचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतः के फूला॥
सुख मकरन्द भरे श्रिय मूला। निरखि राम मन भंवरू न भूला॥
धरम धुरीन धरम गनि जानी। कहेउ मातृ सन अमृत वानी॥
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपति मोरे। आबहुँ अम्ब अनुग्रह तोरे॥'

तुलनात्मक अध्ययन

यहाँ पर दर्शनीय यह है कि तुलसीदास 'वाल्मीकि-रामायण' के राम को ग्रहण न कर 'अध्यात्म रामायण' के राम को ग्रहण किया है। वाल्मीकि के राम में भरत की ओर से अपने स्नेही स्वजनों के सम्बन्ध में जो अनिष्ट की आशंका है, वह 'अध्यात्म रामायण' के राम में नहीं रह गयी है और तुलसीदास के राम में भी नहीं आने पायी है, किन्तु इसी प्रसंग में पिता की आज्ञा के प्रति लक्ष्मण के विद्रोह के शब्दों को सुनकर राम ने संसार की अनित्यता और देहादि से आत्मा की भिन्नता का एक लम्बा उपदेश दिया है , जिस पर उन्होंने माता से नित्य विचार करने के लिए अनुरोध किया है, 'हे माता:! तुम भी मेरे इस कथन पर नित्य विचार करना और मेरे फिर मिलने की प्रतीक्षा करती रहना। तुम्हें अधिक काल तक दु:ख न होगा। कर्म-बन्धन में बँधे हुए जीवों का सदा एक ही साथ

रहना-सहना नहीं हुआ करता, जैसे नदी के प्रवाह में पड़कर बहती हुई डोंगियाँ सदा साथ-साथ ही नहीं चलती'।

तुलसीदास जी भगवान राम, लक्ष्मण और हनुमान जी को रामचारितमानस का पाठ सुनाते हुए।

व्यावहारिकता

तुलसीदास इस अध्यात्मवाद की दुहाई न देकर अपने आदर्शवाद को अव्यावहारिक होने से बचा लेते हैं। वे राम को एक धर्मनिष्ठ नायक के रूप में ही चित्रित करते हैं, जो पिता की आज्ञा का पालन करना अपना एक परम पुनीत कर्त्तव्य समझता है, इसलिए उन्होंने कहा है–

'धरम धुरीन धरम गतिजानी।
कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥'

दूसरा प्रसंग

वनवास के दु:ख संवाद को जब राम सीता को सुनाने जाते हैं,

श्वाल्मीकीय रामायण' में वे कहते हैं– 'मैं निर्जन वन में जाने के लिए प्रस्तुत हुआ हूँ और तुमसे मिलने के लिए यहाँ आया हूँ। तुम भरत के सामने मेरी प्रशंसा न करना, क्योंकि समृद्धिवान लोग दूसरों की स्तुति नहीं सह सकते, इसलिए भरत के सामने तुम मेरे गुणों का वर्णन न करना। भरत के आने पर तुम मुझे श्रेष्ठ न बतलाना, ऐसा करना भरत के प्रतिकूल आचरण कहा जायेगा और अनुकूल रहकर ही भरत के पास रहना सम्भव हो सकता है। परम्परागत राज्य राजा ने भरत को ही दिया है– तुमको चाहिये कि तुम उसे प्रसन्न रखो, क्योंकि वह राजा है'

'अध्यात्म रामायण' में इस प्रसंग में राम ने इतना ही कहा है, हे शुभे! मैं शीघ्र ही उसका प्रबन्ध करने के लिए वहाँ जाऊँगा। मैं आज ही वन को जा रहा हूँ। तुम अपनी सासू के पास जाकर उनकी सेवा-शुश्रुषा में रहो। मैं झूठ नहीं बोलता।...हे अनघे! महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक कैकेयी को वर देकर भरत को राज्य और मुझे वनवास दिया है। देवी कैकेयी ने भरत को राज्य और मुझे वनवास दिया हैं। देवी कैकेयी ने मेरे लिए चौदह वर्ष तक वन में रहना माँगा था, सो सत्यवादी दयालु महाराज ने देना स्वीकार कर लिया है, अत: हे भामिनि! मैं वहाँ शीघ्र ही जाऊँगा, तुम इसमें किसी प्रकार का विघ्न न खड़ा करना।

'रामचरितमानस' में इस प्रकार सीता से विदा लेने गये हुए राम नहीं दिखलाये जाते हैं, इसमें सीता स्वयं कौशल्या के पास उस समय वनवास का समाचार सुनकर आ जाती हैं, जब राम कौशल्या से वन गमन की आज्ञा लेने के लिए आते हैं और सीता की राम के साथ वन जाने की इच्छा समझकर कौशल्या ही राम से उनकी इच्छा का निवेदन करती हैं। 'अध्यात्म रामायण' में ही भरत के प्रति किसी प्रकार की आशंका और सन्देह के भाव राम के मन में नहीं चित्रित किये गये, 'रामचरितमानस' में भी राम के उसी उदार व्यक्तित्त्व को अंकित किया गया है।

भरत प्रेम

तुलसीदास राम के चरित्र में भरत प्रेम का एक अद्‌भुत विकास करते हैं, जो अन्य राम-कथा ग्रन्थों में नहीं मिलता। उदाहरणार्थ-

चित्रकूट में राम के रहन-सहन का वर्णन करते हुए वे कहते है-

'जब-जब राम अवध सुधि करहीं। तब-तब बारि बिलोचन भरहीं।
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई।
कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय बिचारी।।'

भरत के आगमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण जब राम के अनिष्ट की आशंका से उनके विरुद्ध उत्तेजित हो उठते हैं, राम कहते है-

'कहीं तात तुम्ह नीति सुनाई। सबतें कठिन राजमद भाई।।
जो अँचवत मातहिं नृपतेई। नाहिंन साधु समाजिहिं सेई।।
सुनहु लषन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीषा।।
भरतहिं होई न राज मद, विधि हरिहर पद पाइ। कबहुँ कि कांजी
सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ।।
तिमिर तरून तरिनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई।।
गोपद जल बूड़ति घट जोनी। सहज क्षमा बरू छाड़इ छोनी।।
मसक फूँक मकु मेरू उड़ाई। होइ न नृप पद भरतहि भाई।।
लषन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना।।
सगुन क्षीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच विधाता।।
भरत हंस रवि बंस तड़ागा। जनमि लीन्ह गुन शेष विभागा।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उजियारी।।
कहत भरत सुन सील सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ।।'

चित्रकूट में भरत की विनय सुनने के लिए किये गये वशिष्ठ के कथन पर राम कह उठते हैं-

"गुरु अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनन्द विसेषी॥
भरतहिं धरम धुरन्धर जानी॥ निज सेवक तन मानस बानी॥
बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सन भाई॥
जो गुरु पर अंबुज अनुरागी। ते लोक हूं वेदहुं बड़ भागी॥
लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥'

ये तीनों विस्तार मौलिक हैं और 'रामचरितमानस' के पूर्व किसी राम-कथा ग्रन्थ में नहीं मिलते। भरत के प्रति राम के प्रेम का यह विकास तुलसीदास की विशेषता है और पूरे 'रामचरितमानस' में उन्होंने इसका निर्वाह भली-भांति किया है। भरत ननिहाल से लौटते हैं तो कौशल्या उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ती हैं और उनके स्तनों से दूध की धारा बहने लगती है। राम-माता का यह चित्र 'अध्यात्म रामायण' में भी नहीं है, यद्यपि उसमें भरत के प्रति कौशल्या की वह संकीर्ण-हृदयता भी नहीं है, जो 'वाल्मीकि रामायण' में पायी जाती है। 'वाल्मीकि-रामायण' में तो कौशल्या भरत से कहती हैं, 'यह शत्रुहीन राज्य तुम को मिला, तुमने राज्य चाहा और वह तुम्हें मिला। कैकेयी ने बड़े ही निन्दित कर्म के द्वारा इस राज्य को राजा से पाया है। धन-धान्य से युक्त हाथी, घोड़ों और रथों से पूर्ण यह विशाल राज्य कैकेयी ने राजा से लेकर तुमको दे दिया है।' इस प्रकार अनेक कठोर वचनों से कौशल्या ने भरत का तिरस्कार किया, जिनसे वे घाव में सुई छेदने के समान पीड़ा से दु:खी हुए।

रामचरितमानस की लोकप्रियता

इसी प्रकार भरत, सीता, कैकेयी और कथा के अन्य प्रमुख पात्रों में भी तुलसीदास ने ऐसे सुधार किये हैं कि वे सर्वथा तुलसीदास के हो गये हैं। इन चरित्रों में मानवता का जो निष्कलुष किन्तु व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया गया है, वह न केवल तत्कालीन साहित्य में नहीं आया, तुलसी के पूर्व राम-साहित्य में भी नहीं दिखाई पड़ा। कदाचित् इसलिए तुलसीदास के 'रामचरितमानस' ने वह लोकप्रियता प्राप्त की, जो तब से आज तक किसी अन्य कृति को नहीं प्राप्त हो सकी। भविष्य में भी इसकी लोकप्रियता में अधिक अन्तर न आयेगा,

दृढ़तापूर्वक यह कहना तो किसी के लिए भी असम्भव होगा किन्तु जिस समय तक मानव जाति आदर्शों और जीवन-मूल्यों में विश्वास रखेगी, 'रामचरितमानस' को सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा, यह कहने के लिए कदाचित् किसी भविष्य-वक्ता की आवश्यकता नहीं है।

रामचरितमानस की आलोचना

'रामचरितमानस' को पढ़कर समाज के वे लोग क्या सोचते होंगे जिन पर इसमें जातिवादी और वर्णवादी फिकरे कसे गए हैं। शायद यही कारण है कि बाबा नागार्जुन ने 'रामचरितमानस' को लेकर लिखा था कि-...रामचरितमानस हमारी जनता के लिए क्या नहीं है? सभी कुछ है ! दकियानूसी का दस्तावेज है।.. नियतिवाद की नैय्या है।.. जातिवाद की जुगाली है।.. सामंतशाही की शहनाई है! ब्राह्मणवाद के लिए वातानुकूलित विश्रामागार.. पौराणिकता का पूजा मंडप... वह क्या नहीं है! सब कुछ है, बहुत कुछ है ! रामचरितमानस की बदौलत ही उत्तर भारत की लोकचेतना सही तौर पर स्पंदित नहीं होती। 'रामचरितमानस' की महिमा ही जनसंघ के लिए हिन्दी भाषी प्रदेशों में सबसे बडा भरोसा होती है शूद्र वर्ग और स्त्री वर्ग को 'सहज अपावन' और 'अति अधम' बतलाने वाली एक भी पंक्ति जिस संस्करण में छपी हो, 'रामचरितमानस' का वह संस्करण गैर-कानूनी घोषित हो जाये। ब्राह्मणशाही और सामंतशाही के धूर्त प्रतिनिधि ऊंचे-ऊंचे पदों पर जमे बैठे हैं। अब भी मनुस्मृति और रामचरितमानस उनके गले में झूलता रहेगा को ही वे अपना असली 'नीतिग्रंथ' मानते हैं।.. समाजवाद के हमारे सपने तब तक अधूरे ही रहेंगे, जब तक 'मानस' का मोह नहीं टूटता... पिछड़ी जातियों में पैदा होकर भी सौ किस्म की मजबूरियाँ झेलने वाले साठ प्रतिशत इंसान तब तक सही अर्थों में 'स्वतंत्र और स्वाभिमानी' भारतीय नहीं होंगे, जब तक 'रामचरितमानस' सरीखे पौराणिक संविधान ग्रन्थ की कृपा से प्रभु जातीय भारतीयों की गुलामी का पट्टा उनके गले में झूलता रहेगा।

10

कवितावली

कवितावली गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं में है। सोलहवीं शताब्दी में रची गयी कवितावली में श्री रामचन्द्र के इतिहास का वर्णन कवित्त, चौपाई, सवैया आदि छंदों में की गई है। रामचरितमानस के जैसे ही कवितावली में भी सात काण्ड हैं। ये छन्द ब्रजभाषा में लिखे गये हैं और इनकी रचना प्रायः उसी परिपाटी पर की गयी है जिस परिपाटी पर रीति काल का अधिकतर रीति-मुक्त काव्य लिखा गया।

रचना काल

16वीं शताब्दी में रची गयी कवितावली में श्री रामचन्द्र जी के इतिहास का वर्णन कवित्त, चौपाई, सवैया आदि छंदों में की गई है। 'कवितावली' के अधिकतर छंद केशव की 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' के रचना- काल के आस- पास और बाद के हैं। जो छन्द उत्तरकाण्ड में आते हैं उनमें भी तुलसीदास के कवि- जीवन के उत्तरार्द्ध की ही घटनाओं का उल्लेख हुआ है। कुछ छन्द तो कवि के जीवन के निरे अंत के ज्ञात होते हैं। इसलिए 'कवितावली' के छन्दों का रचना- काल संख्या 1655 से 1680 तक ज्ञात होता है।

साहित्यिक विशेषताएँ

कवितावली की छंद रचना

इन छन्दों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

- एक तो वे जो रामकथा के सम्बन्ध के है और
- दूसरे वे जो अन्य विविध विषयों के हैं।

समस्त छन्द सात खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम प्रकार के छन्द रचना के लंका- काण्ड तक आते हैं और द्वितीय प्रकार के छन्द उत्तरकाण्ड में रख दिये गये हैं।

कथा

कथा- सम्बन्धी छन्द 'गीतावली' के पदों की भाँति- वरन् उससे भी अधिक स्फुट ढ़ग से लिखे गये हैं। अरण्य- कांड का एक ही छन्द है जिसमें हरिण के पीछे राम के जाने मात्र का उल्लेख है। किष्किन्धा काण्ड की कथा का एक ही छन्द नहीं है– जो एक छन्द किष्किन्धा काण्ड के शीर्षक के नीचे दिया भी गया है, वह वास्तव में सुन्दर काण्ड की कथा का है, क्योंकि उसमें हनुमान के समुद्र लाँघने के सिन्धु- तीर के एक भू-धर पर उचक कर चढ़ने का उल्लेख हुआ है। रचना में उत्तरकाण्ड का कथा- विषयक कोई छन्द नहीं है। इसके उत्तरकाण्ड में प्रारम्भ में राम के गुण- गान के कुछ छन्द हैं और तदनंतर कुछ स्फुट विषयों के छन्दों के आने के बाढ़ आत्म- निवेदन विषयक छन्द आते हैं। इन आत्म- निवेदन विषयक छन्दों में कवि ने प्रायः अपने जीवन के विभिन्न भागों पर दृष्टिपात किया है, जो उसके जीवनवत्त के तथ्यों को स्थिर करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ छन्दों में कवि ने सीधे- सीधे भी अपने और समाज के अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। उत्तर काण्ड के ये समस्त छन्द अप्रतिम महत्त्व के हैं।

कवितावली का काव्य- शिल्प

'कवितावली' का काव्य- शिल्प मुक्तक काव्य का है। उक्तियों की विलक्षणता, अनुप्रासों की छटा, लयपूर्ण शब्दों की स्थापना कथा भाग के छन्दों में दर्शनीय है। आगे रीति काल में यह काव्य शैली बहुत लोकप्रिय हुई और

इस प्रकार तुलसीदास इस काव्य शैली के प्रथम कवियों में से ज्ञात होते हैं फिर भी उनकी 'कवितावली' के छन्दों में पूरी प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। कुछ छन्द तो मुक्तक शिल्प की दृष्टि से इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि उनसे सुन्दर छन्द पूरे रीति साहित्य में भी कदाचित् ही मिल सकेंगे, यथा बालकाण्ड के प्रथम सात छन्द। इसका कारण कदाचित् यह है कि इसके अधिकतर छन्द तुलसीदास के कवि जीवन के उत्तरार्द्ध के है। इसकी कथा पूर्ण रूप से 'रामचरित मानस' का अनुसरण करती है, यह तथ्य भी इसी अनुमान की पुष्टि करता है।

कवितावली का रचना- काल

हिन्दी रीति धारा का प्रारम्भ केशव की 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' से माना जा सकता है। हो सकता है कि 'कवितावली' के अधिकतर छन्द इनके रचना- काल के आस- पास और बाद के हों । आत्मोल्लेख के जो छन्द उत्तरकाण्ड में आते हैं उनमें भी तुलसीदास के कवि- जीवन के उत्तरार्द्ध की ही घटनाओं का उल्लेख हुआ है। कुछ छन्द तो कवि के जीवन के निरे अंत के ज्ञात होते हैं। इसलिए 'कवितावली' के छन्दों का रचना- काल संख्या 1655 से 1680 तक ज्ञात होता है।

कवितावली का संकलन

'कवितावली' का संकलन कब हुआ होगा, यह विचारणीय है, क्योंकि रचना तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है। इसकी जो भी प्रतियाँ अभी तक मिली हैं, उनके छन्दों तथा छन्द- क्रम में अंतिम कुछ छन्दों को छोड़कर कोई अंतर नहीं मिलता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इसका संकलन कवि ने अपने जीवन काल में ही कर दिया था। उसके देहावसान के बाद जो कवित्त, सवैये और भी प्राप्त हुए उन्हें रचना के अंत में जिस प्रकार वे प्राप्त होते गये, लोगों ने जोड़ लिया, इसीलिए अंत के कुछ छन्दों के विषय में प्रतियों में यह अंतर मिलता है।

सात काण्ड

कवितावली (पद्य)–बाल काण्ड
कवितावली (पद्य)–अयोध्या काण्ड

कवितावली (पद्य)–अरण्य काण्ड
कवितावली (पद्य)–किष्किन्धा काण्ड
कवितावली (पद्य)–सुन्दर काण्ड
कवितावली (पद्य)–लंका काण्ड
कवितावली (पद्य)–उत्तर काण्ड

11

गीतावली –तुलसीदास

गीतावली तुलसीदास की एक प्रमुख रचना है। इसके गीतों में भगवान श्रीराम की कथा कही गयी है अथवा यों कहना चाहिए कि राम-कथा सम्बन्धी, जो गीत गोस्वामी तुलसीदास ने समय-समय पर रचे, वे इस ग्रन्थ में संग्रहित हुए हैं। सम्पूर्ण रचना सात खण्डों में विभक्त है। काण्डों में कथा का विभाजन प्रायः उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में हुआ है। किन्तु न इसमें कथा की कोई प्रस्तावना या भूमिका है और न ही 'मानस' की भाँति इसमें उत्तरकाण्ड में अध्यात्म विवेचन। बीच-बीच में भी 'मानस' की भाँति आध्यात्मिक विषयों का उपदेश करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। सम्पूर्ण पदावली राम-कथा तथा रामचरित से सम्बन्धित है। मुद्रित संग्रह में 328 पद हैं।

पूर्ववर्ती रूप

'गीतावली' का एक पूर्ववर्ती रूप भी प्राप्त हुआ है, जो इससे छोटा था। उसका नाम 'पदावली रामायण' था। इसकी केवल एक प्रति प्राप्त हुई है और वह भी अत्यन्त खण्डित है। इसमें सुन्दर और उत्तरकाण्डों के ही कुछ अंश बचे हैं और उत्तरकाण्ड का भी अन्तिम अंश न होने के कारण पुष्पिका नहीं रह गयी है। इसलिए प्रति की ठीक तिथि ज्ञात नहीं है। यह संग्रह वर्तमान से छोटा रहा होगा। यह इससे प्रकट है कि प्राप्त अंशों में वर्तमान संग्रह के अनेक पद

बीच-बीच में नहीं है। यदि यह कहा जाये कि यह वर्तमान का कोई चयन होगा, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि कभी-कभी छन्दों का क्रम भिन्न मिलता है। इसके अतिरिक्त इसके साथ की ही एक प्रति 'विनय-पत्रिका' की प्राप्त हुई है, जिसका प्रति में ही 'राम गीतावली' नाम दिया हुआ है। वह भी 'विनय-पत्रिका' का वर्तमान से छोटा पाठ देती है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पदावली रामायण' का वह पाठ, जो प्रस्तुत एक मात्र प्रति में मिलता है, 'गीतावली' का ही कोई पूर्व रूप रहा होगा।

आलोचक कथन

'गीतावली' में कुछ पद ऐसे भी हैं, जो 'सूरसागर' में मिलते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि ये पद उसमें 'सूरसागर' से गये होंगे। सूरदास, तुलसीदास से कुछ ज्येष्ठ थे, इसलिए कुछ आलोचक तो यह भी कहने में नहीं हिचकते कि इन्हें तुलसीदास ने ही 'गीतावली' में रख लिया होगा और जो इस सीमा तक नहीं जाना चाहते, वे कहते हैं कि तुलसीदास के भक्तों ने उनकी रचना को और पूर्ण बनाने के लिए यह किया होगा। किन्तु एक बात इस सम्बन्ध में विचारणीय है। 'गीतावली' की प्रतियाँ कई दर्जन संख्या में प्राप्त हुई है और वे सभी आकार-प्रकार में सर्वथा एक-सी हैं और उन सबों में ये छन्द पाये जाते हैं।

सूरसागर की प्रतियाँ

'सूरसागर' की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें आकार-प्रकार भेद अधिक है। कुछ में केवल कुछ सौ पद हैं तो कुछ में कुछ हजार पद हैं। उनमें क्रम आदि में भी परस्पर काफी वैभिन्न्य है और फिर 'सूरसागर' की सभी प्रतियों में ये पद पाये जाते हैं, या नहीं, यह अभी तक देखा नहीं गया है। 'सूरसागर' के मुद्रित पाठ में अन्य अनेक ज्ञात कवियों-भक्तों के पद भी सम्मिलित मिलते हैं। ऐसी दशा में वास्तविकता तो उल्टे यह जान पड़ती है कि ये पद तुलसीदास की ही 'गीतावली' के थे, जो अन्य कवियों-भक्तों की पदावली की भाँति 'सूरसागर' में सूरदास के प्रेमियों के द्वारा सम्मिलित कर लिये गये।

अंतर

तुलसीदास ने कुल लगभग सात सौ पदों की रचना की है और गीति शिल्प में वे किसी से पीछे नहीं हैं। ऐसी दशा में वे तीन पद 'गीतावली' में और

तीन-चार पद 'कृष्ण गीतावली' में सूरदास या किसी अन्य कवि से लेकर क्यों रखते? इसमें जो राम कथा आती है, वह प्रायः 'रामचरितमानस' के समान ही है, केवल कुछ विस्तारों में अन्तर है, जो 'रामचरितमानस 'के पूर्व रचे ग्रन्थों में ही मिलते हैं, और कुछ ऐसे हैं, जो कवि की किसी भी अन्य कृति में नहीं मिलते हैं।

प्रथम प्रकार के अन्तर निम्नलिखित हैं-

परशुराम-राम मिलन मिथिला की स्वयंवर भूमि में न होकर बारात की वापसी में होता है और उसमें विवाद परशुराम-राम में ही होता है, लक्ष्मण से नहीं।

राम के राज्यारोहण के अनन्तर 'स्थान, यति, खग' के न्याय, ब्राह्मण बालक के जीवन-दान, सीता के निर्वासन और लव-कुश जन्म की कथाएँ आती हैं। इसी विस्तार में 'रामाज्ञा प्रश्न' भी है।

दूसरे प्रकार के अन्तर निम्नलिखित है-

स्वयंवर भूमि में जब विश्वामित्र राम को धनुष तोड़ने के लिए आज्ञा देते हैं, जनक राम के कृतकार्य होने के विषय में सन्देह प्रकट करते हैं। इस प्रकार विश्वामित्र जनक के योग-वैराग्य की सराहना करते हुए कहते हैं कि ऐसा वे राम के स्नेह के वश में होने के कारण समझते हैं और राम भी जनक के योग वैराग्य की उस सराहना का समर्थन करते हैं, जब इन सबके अनन्तर जनक की शंका का निवारण हो जाता है, 'गीतावली' में तब राम धनुष तोड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं।

1. विश्वामित्र के साथ गये हुए राम-लक्ष्मण के विषय में माताएँ चिन्तित होती हैं।
2. वनवास की अवधि में कौशल्या अनेक बार राम-विरह में व्यथित होती हैं।
3. राम, जटायु के प्रति पितृ-स्नेह और शबरी के प्रति मातृ-स्नेह व्यक्त करते हैं।
4. रावण के द्वारा सीता के हरण की सूचना राम को देव-गण देते हैं।
5. हनुमान जब सीता को राम की मुद्रिका देते हैं और सीता हनुमान से राम का कुशल पूछती हैं और मुद्रिका देती है।
6. रावण से अपमानित होकर विभीषण सीधे राम की शरण में नहीं जाता है।

युद्ध स्थल में लक्ष्मण के आहत होने का समाचार पाकर सुमित्रा हनुमान से अपने दूसरे पुत्र शत्रुघ्न को भी राम के राज्याभिषेक के अनन्तर दोलोत्सव,

दीपमालिकोत्सव तथा बसन्तोत्सव आदि होते हैं, जिसमें अयोध्या का समस्त नर-नारी समाज नि:संकोच भाव से सम्मिलित होता है।

'मानस' 'गीतावली' की तुलना में आकार-प्रकार से चौगुना है और प्रबन्ध काव्य हैं। फिर भी ये कथा विस्तार से ज्ञात होता है कि 'गीतावली' के कुछ अंश 'मानस' के पूर्व की रचना अवश्य होंगे और इसी प्रकार उपर्युक्त दूसरे प्रकार के कथा-विस्तारों से ज्ञात होता है कि उसके अंश 'रामचरितमानस' के बाद की रचना होंगे। 'रामचरितमानस' के समान तो 'गीतावली' का अधिकांश है ही, जिसका यहाँ पर कोई प्रमाण देना अनावश्यक होगा। इस प्रकार 'गीतावली' के पदों की रचना एक बहुत विस्तृत अवधि में हुई होगी।

विशिष्ट स्थान

'गीतावली' का तुलसीदास की रचनाओं में एक विशिष्ट स्थान है, जिस पर अभी तक यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है। अनेक बातों में यह 'रामचरितमानस' के समान होते हुए भी गीतों के साँचे उसी की राम-कथा को ढाल देने का प्रयास मात्र नहीं है। यह एक प्रकार से 'मानस' का पूरक है। 'मानस' में जीवन के कोमल और मधुर-पक्षों को जैसे जान-बूझकर दबाया गया होय 'मानस' में कौशल्या राम को वन भेजकर केवल एक बार व्यथित दीख पड़ती है, वह है भरत के आगमन पर, किन्तु फिर पुत्र शोकातुरा कौशल्या के दर्शन नहीं होते। 'गीतावली' में तो अनेक बार वह राम विरह में धैर्य खोती चित्रित होती है, उसमें तो वह राम विरह में उन्माद-ग्रस्त हो चुकी हैं-

कबहु प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे।
उठहु तात बलि मातृ बदन पर अनुज सखा सब द्वारे॥
कबहुँ कहति यों बड़ी बार भई जाहु भूप पहं भैया।
बन्धु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरी मैया॥

आदि पदों में कौशल्या का जो चित्र अंकित किया गया है, वह 'मानस' में नहीं किया गया है और कदाचित् जान-बूझकर नहीं किया गया है।

सीता के साथ राम की जिस 'माधुरी-विलास-हाल' का चित्रण चित्रकूट की दिनचर्या में 'गीतावली' में हुआ है अथवा उसके उत्तरकाण्ड में भोर में 'प्रिय प्रेम रस पागे' अलसाये हुए राम का जो चित्रण हुआ है, और विभिन्न प्रसंगों में अयोध्या के नारी-समाज द्वारा राम के जिस सौन्दर्य-पान का वर्णन किया गया है, उनका एक भी समतुल्य 'मानस' में नहीं है।

'मानस' की रचना तुलसीदास ने सम्पूर्ण समाज के लिए की थी। 'सुर सरि सम सब कहै हित होई' यह भावना उनकी रचना के सीमाओं का कहीं भी अतिक्रमण नहीं होने दिया, जबकि 'गीतावली' के अधिकतर पदों की रचना उन्होंने सम्भवत: केवल भक्त और रसिक समुदाय के लिए की। इसलिए इसमें हमें 'मानस' के तुलसीदास की अपेक्षा एक अधिक वास्तविक और हाड़-मांस के तुलसीदास के दर्शन होते हैं।

12

हनुमान चालीसा

हनुमान चालीसा गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित एक प्रसिद्ध काव्यात्मक कृति है। यह कृति भगवान श्रीराम के भक्त हनुमान को समर्पित है, जिसमें उनके गुणों आदि का बखान किया गया है। हिन्दू धर्म में हनुमान जी की आराधना हेतु 'हनुमान चालीसा' का पाठ सर्वमान्य साधन है। इसका पाठ सनातन जगत में जितना प्रचलित है, उतना किसी और वंदना या पूजन आदि में नहीं दिखाई देता। 'श्री हनुमान चालीसा' के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास जी माने जाते हैं। इसीलिए 'रामचरितमानस' की भाँति यह हनुमान गुणगाथा फलदायी मानी गई है। यह अत्यन्त लघु रचना है, जिसमें पवनपुत्र हनुमान की सुन्दर स्तुति की गई है। 'बजरंग बली' की भावपूर्ण वंदना तो इसमें है ही, साथ ही भगवान श्रीराम का व्यक्तित्त्व भी सरल शब्दों में उकेरा गया है।

अमर कृति

गोस्वामी तुलसीदास ने राम भक्ति के द्वारा न केवल अपना ही जीवन कृतार्थ किया वरन् समूची मानव जाति को भगवान श्रीराम के आदर्शों से जोड़ दिया। तुलसीदास जी कि 'हनुमान चालीसा' अमर कृतियों में गिनी जाती है। संवत् 1554 को श्रावण मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को अवतरित गोस्वामी तुलसीदास ने सगुण भक्ति की राम भक्ति धारा को ऐसा प्रवाहित किया कि आज गोस्वामी जी राम भक्ति के पर्याय बन गए हैं। यह गोस्वामी तुलसीदास

की ही देन है, जो आज भारत के कोने-कोने में 'रामलीला' का मंचन होता है। कई संत राम कथा के माध्यम से समाज को जागृत करने में सतत् लगे हुए हैं। तुलसीदास जी 'रामचरितमानस' के ही नहीं अपितु विश्व में सबसे ज्यादा पढ़ी जानें वाली प्रार्थना 'हनुमान चालीसा' के भी रचियता थे।

उत्तर प्रदेश में चित्रकूट के राजापुर में तुलसीदास की जन्म स्थली में आज भी उनके हाथ का लिखा 'रामचरितमानस' ग्रंथ का एक भाग 'अयोध्याकांड' सुरक्षित है। इसके दर्शन के लिये पूरी दुनिया से लोग आते हैं। तुलसीदास की 11वीं पीढ़ी के लोग एक धरोहर की तरह इसे संजो कर रखे हुये हैं। कभी अपने परिवार से ही उपेक्षित कर दिये गये अबोध राम बोला आज पूरे विश्व में भगवान की तरह पूजे जाते हैं। संत तुलसीदास चित्रकूट में अपने गुरु स्थान नरहरिदास आश्रम पर कई वर्षों तक रहे और यहाँ पर उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम व उनके भ्राता लक्ष्मण के दो बार साक्षात् दर्शन भी किये थे।

लोकप्रियता

यद्यपि पूरे भारत में 'हनुमान चालीसा' का पाठ लोकप्रिय है, किन्तु विशेष रूप से उत्तर भारत में यह बहुत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। लगभग सभी हिन्दुओं को यह कंठस्थ होता है। कहा जाता है कि इसके पाठ से भय दूर होता है, क्लेश मिटते हैं। इसके गंभीर भावों पर विचार करने से मन में श्रेष्ठ ज्ञान के साथ भक्ति-भाव जाग्रत होता है। इस रचना के साथ विशेष बात यह है कि दक्षिण भारत के मंदिरों में भी यह वहाँ की लिपि में लिखा हुआ देखा जा सकता है, तथा दक्षिण के हनुमान भक्त यदि हिन्दी न भी जानते हों तो भी इसे एक मंत्र के समान याद रखते हैं। उल्लेखनीय है कि संस्कृत के तो अनेक स्तोत्र उत्तर-दक्षिण में प्राचीन काल से ही समान रूप से लोकप्रिय हैं, परन्तु भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी की विरली ही रचनाओं को यह गौरव प्राप्त हो सका है।

मूल पाठ

श्रीगुरु चरण सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि ।
बरनऊँ रघुवर विमल जसु, जो दायकु फल चारि ।।
बुद्धिहीन तनु जानिके, सुमिरो पवन कुमार ।
बल बुद्धि विद्या देहु मोहिं, हरहु कलेश विकार ।।
जय हनुमान ज्ञान गुन सागर । जय कपीस तिहुँ लोक उजागर ।।

राम दूत अतुलित बल धामा । अंजनिपुत्र पवनसुत नामा ।।
महावीर विक्रम बजरंगी । कुमति निवार सुमिति के संगी ।।
कंचन बरन विराज सुवेसा । कानन कुण्डल कुंचित केसा ।।
हाथ बज्र औ ध्वजा विराजै । काँधे मूँज जनेऊ साजै ।।
शंकर सुवन केसरीनंदन । तेज प्रताप महा जग बंदन ।।
विद्यावान गुनी अति चातुर । राम काज करिबे को आतुर ।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया । राम लखन सीता मन बसिया ।।
सूक्ष्म रूप धरि सियहीं दिखावा । बिकट रूप धरि लंक जरावा ।।
भीम रूप धरि असुर सँहारे । रामचन्द्रजी के काज सँवारे ।।
लाय सजीवन लखन जियाये । श्री रघुबीर हरषि उर लाये ।।
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई । तुम मम प्रिय भरतहि समभाई ।।
सहस बदन तुम्हरो जस गावै । अस कहि श्रीपति कण्ठ लगावै ।।
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा । नारद सारद सहित अहीसा ।।
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते । कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते ।।
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा । राम मिलाय राजपद दीन्हा ।।
तुम्हरो मन्त्र विभीषन माना । लंकेश्वर भये सब जग जाना ।।
जुग सहस्त्र जोजन पर भानु । लील्यो ताहि मधुर फल जानु ।।
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं । जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं ।।
दुर्गम काज जगत के जेते । सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ।।
राम दुआरे तुम रखवारे । होत न आज्ञा बिनु पैसारे ।।
सब सुख लहैं तुम्हारी सरना । तुम रक्षक काहू को डरना ।।
आपन तेज सम्हारो आपै । तीनों लोक हाँक तें काँपै ।।
भूत पिसाच निकट नहिं आवै । महावीर जव नाम सुनावैं ।।
नासै रोग हरै सब पीरा । जपत निरंतर हनुमत बीरा ।।
संकट ते हनुमान छुड़ावै । मन क्रम वचन ध्यान जो लावै ।।
सब पर राम तपस्वी राजा । तिनके काज सकल तुम साजा ।।
और मनोरथ जो कोई लावै । सोई अमित जीवन फल पावै ।।
चारो जुग परताप तुम्हारा । है परसिद्ध जगत उजियारा ।।
साधु संत के तुम रखबारे । असुर निकंदन राम दुलारे ।।
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता । अस वर दीन जानकी माता ।।
राम रसायन तुम्हरे पासा । सदा रहो रघुपति के दासा ।।

तुम्हरे भजन राम को पावै । जनम जनम के दु:ख बिसरावै ।।
अंत काल रघुवर पुर जाई । जहाँ जन्म हरिभक्त कहाई ।।
और देवता चित्त न धरई । हनुमत सेइ सर्व सुख करई ।।
संकट कटै मिटै सब पीरा । जो सुमिरे हनुमत बलबीरा ।।
जै जै जै हनुमान गोसाई । कृपा करहु गुरुदेव की नाई ।।
जो सत बार पाठ कर कोई । छूटहि बंदि महासुख होई ।।
जो यह पढै हनुमान चलीसा । होय सिद्धि साखी गौरीसा ।।
तुलसीदास सदा हरि चेरा । कीजै नाथ हृदय मँह डेरा ।।
पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रूप ।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप ।।
।। समाप्त ।।
। नम: हनुमंताये । नम: वासुदेवाये । नम: हरि प्रिय पद्मा
जय श्री हनुमान जय श्री सीया राम लखन

महत्त्व

वर्तमान युग में हनुमान भगवान शिव के एक ऐसे अवतार हैं, जो अति शीघ्र प्रसन्न होते हैं और जो अपने भक्तों के समस्त दु:खों को हरने में समर्थ हैं। हनुमान का नाम स्मरण करने मात्र से ही भक्तों के सारे संकट दूर हो जाते हैं। क्योंकि इनकी पूजा-अर्चना अति सरल है, इसी कारण हनुमान जी जन साधारण में अत्यंत लोकप्रिय हैं। इनके मंदिर देश-विदेश सभी जगह स्थित हैं, अत: भक्तों को पहुँचने में अत्यधिक कठिनाई भी नहीं आती है। हनुमान को प्रसन्न करना अति सरल है। 'हनुमान चालीसा' और 'बजरंग बाण' के पाठ के माध्यम से साधारण व्यक्ति भी बिना किसी विशेष पूजा-अर्चना से अपनी दैनिक दिनचर्या से थोड़ा-सा समय निकाल ले, तो उसकी समस्त परेशानी से मुक्ति मिल जाती है।

13

विनय-पत्रिका

'विनय-पत्रिका' तुलसीदास के 279 स्तोत्र गीतों का संग्रह है। प्रारम्भ के 63 स्तोत्र और गीतों में गणेश, शिव, पार्वती, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, सीता और विष्णु के एक विग्रह विन्दु माधव के गुणगान के साथ राम की स्तुतियाँ हैं। इस अंश में जितने भी देवी-देवताओं के सम्बन्ध के स्तोत्र और पद आते हैं, सभी में उनका गुणगान करके उनसे राम की भक्ति की याचना की गयी है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि तुलसीदास भले ही इन देवी-देवताओं में विश्वास रखते रहे हों, किंतु इनकी उपयोगिता केवल तभी तक मानते थे, जब तक इनसे राम भक्ति की प्राप्ति में सहयोग मिल सके।

रामभक्ति

'विनयपत्रिका' के ही एक प्रसिद्ध पद में उन्होंने कहा है -

'तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो।।'

इन स्तोत्र और पदों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह कोरा उपदेश नहीं था, वरन् अपने जीवन में उन्होंने इसको चरितार्थ भी किया है। इस अंश के अनंतर तुलसीदास के रामभक्ति और राम से आत्म-निवेदन के सम्बन्ध के पद आते हैं। अंत के तीन पदों में वे राम के समक्ष अपनी 'विनय-पत्रिका' प्रस्तुत करके हनुमान, शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण से अनुरोध करते हैं कि वे राम से

उनके अनन्य प्रेम का अनुमोदन करें और इनके अनुमोदन करने पर राम तुलसीदास की विनय पत्रिका स्वीकृत करते हैं।

रामगीतावली

'विनय-पत्रिका' में स्वामी की सेवा में करुणतम शब्दों में अपनी दीनता का निवेदन किया गया है। स्वामी के सम्मुख अपने को सभी प्रकार से हीन, मलीन और निराश्रय कहा गया है, जिससे वे करुणा सागर द्रवित होकर दास को अपने चरणों की शरण में रख लें और उसके जन्म जन्मांतर की साध 'विनय-पत्रिका' का एक अपेक्षाकृत छोटा रूप मिला है, जिसकी केवल एक प्रति प्राप्त हुई है किंतु यह एक प्रति इतनी मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण है, जितनी कवि की रचनाओं की कोई भी अन्य प्रति नहीं है, कारण यह है कि जीवन काल की संख्या 1666 की है। इस प्रति के हाशिये 'रा. गी.' संकेत लिखे हुए हैं और अंत में एक श्लोक में रचना का नाम रामगीतावली दिया हुआ है, इसलिए यह निश्चित है कि 'विनय पत्रिका' के इस रूप का नाम 'रामगीतावली' था। पाठ केवल 176 गीतों का है, जिनमें से कुछ पद प्रति के खण्डित होने के कारण अप्राप्य भी हो गये हैं, जितने पद पूर्ण या आंशिक रूप में प्राप्त हैं, उनमें से भी पाँच पद ऐसे हैं, जो रचना के 'विनय-पत्रिका' रूप में न मिलकर वर्तमान 'गीतावली' में मिलते हैं और 'गीतावली' के प्रसंग में अन्यत्र उसकी 'पदावली रामायण' पाठ की जिस प्रति का उल्लेख किया गया है, उसमें नहीं मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि 'राम गीतावली' के पाठ में वर्तमान 'विनय-पत्रिका' के अधिक से अधिक 171 पद थे, 108 या अधिक पद बाद में उसमें मिलाकर उसका 'विनय-पत्रिका' रूप निर्मित किया गया, और उस समय इन पाँच या अधिक पदों को, जो अब 'गीतावली' में हैं गीतावली के लिए अधिक उपयुक्त समय कर उसमें रख दिया गया।

पदावली रामायण

'पदावली रामायण' के इस रूप में रचना के वर्तमान 'विनय-पत्रिका' रूप के अंतिम तीन पद नहीं हैं, जिनमें राम के दरबार में विनय-पत्रिका प्रस्तुत की जाती और स्वीकृत होती है। उसके अंत में वर्तमान 'विनय पत्रिका' स्तोत्र 39 तथा 40 आते हैं, जो भरत और शत्रुघ्न की स्तुतियों के हैं। इससे यह प्रकट है कि इस गीत - संग्रह को 'विनय-पत्रिका' का रूप देने की कल्पना भी बाद

की है और कदाचित् उसी समय राम के दरबार में 'विनय-पत्रिका' के प्रस्तुत किये जाने और उसके स्वीकृत होने के सम्बन्ध के पद उसमें रचकर रख दिये गये।

समय निर्धारण

'विनय पत्रिका' के उपर्युक्त प्रथम 63 तथा अंतिम 3 स्तोत्र- पदों के अतिरिक्त शेष में कोई स्पष्ट क्रम नहीं लक्षित होता है और इसीलिए किन्हीं भी शीर्षकों में वे विभाजित नहीं मिलते हैं। उनकी रचना किस क्रम में हुई होगी, यह कहना एक प्रकार से असम्भव ही है। हम इतना ही निश्चय के साथ कह सकते हैं कि 'राम गीतावली' पाठ में संकलित स्तोत्र और पद पहले के हैं उनकी रचना संख्या 1666 के पूर्व हो गयी थी, शेष पद कदाचित् उन स्तोत्र- पदों के बाद के हैं। इतना ही और भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'विनय पत्रिका' रूप भी कवि का दिया हुआ है, जिस प्रकार 'राम गीतावली' रूप उसका दिया हुआ था क्योंकि 'विनय-पत्रिका' की दर्जनों प्रतियाँ प्राप्त हुई और उनमें से एक भी ऐसी नहीं हैं जिनमें कोई भी स्तोत्र या पद भिन्न हों अथवा उनका क्रम भी भिन्न हो फिर 'राम गीतावली' के कुछ पद 'रामचरित मानस' के भी पूर्व रचे गये होंगे, यह इससे ज्ञात होता है कि उसके एक पद में, जो अब 'गीतावली' के अन्त में रख दिया है, परशुराम और राम का मिलन मिथिला से सीता के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान करने के अनंतर होता है और कथा का यह रूप कवि की 'रामचरित मानस' के पूर्व की रचनाओं में ही मिलता है। इसलिए यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि 'विनय-पत्रिका' के स्तोत्र- पदों की रचना एक बहुत विस्तृत अर्वाध में हुई है और इसलिए वह कवि के आध्यात्मिक जीवन के एक बहुत बड़े भाग का परिचय प्रस्तुत करती है।

गीति साहित्य

आत्म- निवेदनपरक गीति- साहित्य में 'विनय-पत्रिका' की समता की दूसरी रचना हिन्दी साहित्य में नहीं है और कुछ आलोचकों ने कहा है कि इसकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ आत्म - निवेदनपरक गीति साहित्य में भी होनी चाहिए। इसके पदों में मन को जगत की ओर से खींचकर प्रभु के चरणों में अपने को लगाने के लिए उद्‌बोधन है, इसलिए यहाँ एक ओर संसार की असारता और

उसके मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया गया है, दूसरी ओर यह भी समझाया गया है कि राम से बढ़कर दूसरा स्वामी नहीं है। इन प्रसंगों में राम के शील- स्वभाव का विस्तृत गुणगान किया गया है और उनके नाम स्मरण को उनके स्नेह की प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन बताते हुए मन को प्रायः नामानुराग का उपदेश दिया गया है। कुछ पदों में स्वामी की सेवा में करुणतम शब्दों में अपनी दीनता का निवेदन किया गया है। स्वामी के सम्मुख अपने को सभी प्रकार से हीन, मलीन और निराश्रय कहा गया है, जिससे वे करुणासागर द्रवित होकर दास को अपने चरणों की शरण में रख लें और उसके जन्म - जन्मांतर की साध पूरी हो। साथ ही स्वामी की उदारता का उन्हें स्मरण कराने के लिए उनकी अशरण-शरण विरुदावली भी उनके सम्मुख प्रायः प्रस्तुत की गयी है। कभी- कभी याचक माँगते- माँगते थक जाता है, जब वह स्वामी की ओर उपेक्षा का भाव देखता है किंतु अपने में ही कमी का अनुभव करता हुआ आशा खोता नहीं है। कुछ पदों में जीवन के पश्चात्ताप के बड़े ही प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, मन की कुटिलता और इन्द्रियपरता की भरपूर भर्त्सना की गयी है किंतु फिर- फिर उसको प्रभु के प्रेम के मार्ग में लगाने के लिए यत्न किया गया है। अंत में भक्त अपने प्रयासों में सफल होता है और उसके स्वामी राम उसकी प्रार्थना को स्वीकार करते हैं।

रचनाक्रम की अनिश्चितता

इन पदों में वैराग्य के प्रथम सोपन से लेकर प्रभु- कृपा प्राप्ति तक के अनेकानेक सोपानों को तय करने का एक बहुत कुछ पूर्ण इतिवृत आता है। कमी इतनी ही है कि इन पदों का रचना- क्रम निश्चित नहीं है और न हमें यह ज्ञात है कि कौन- सा पद किन परिस्थितियों में रचा गया है। फिर भी ये जिस रूप में हमें प्राप्त हैं, उस रूप में भी ये तुलसीदास की साधना का अत्यंत प्रमाणिक यथातथ्य और विशद् परिचय देते हैं और इसलिए ये सामूहिक रूप से उनकी रचनाओं में प्रायः उतने ही महत्त्व के अधिकारी है, जितना उनकी और कोई रचना है।

जो पै जानकिनाथ सों नातो नेहु न नीच ।
स्वारथ-परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच । 1 ।
धरम बरन आश्रमनिके पैयत पोथिही पुरान ।
करतब बिनु बेष देखिये, ज्यों सरीर बिनु प्रान । 2 ।

बेद बिदित साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि ।
राम-प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर-सरिता बिनु बारि । 3 ।
नाना पथ निरबानके, नाना बिधान बहु भाँति ।
तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-नाम दिन-राति । 4 ।

अरे नीच ! यदि श्रीजानकीनाथ रामचन्द्र जी से तेरा प्रेम और नाता नहीं है, तो तेरे स्वार्थ और परमार्थ कैसे सिद्ध होंगे? इस अवस्था में तो कुटिल कलियुग ने तुझको बीच में ही ठग लिया (जिससे लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ गये) । 1 ।

(भगवान के प्रेम से विहीन लोगों के लिये) वर्ण और आश्रम के धर्म केवल पोथियों और पुराणों में ही लिखे पाये जाते हैं । उनके अनुसार कर्त्तव्य कोई नहीं करता, ऐसे कर्त्तव्यहीन कोरे भेष वैसे ही हैं जैसे बिना प्राणों के शरीर हों। (उनसे कोई लाभ नहीं) । 2 ।

सुनते हैं कि वेदों में जितने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध (यज्ञ आदि) साधन हैं, वे सब अर्थ, काम और मोक्ष और चारों को देने वाले हैं, किन्तु बिना श्री राम-प्रेम के उन सबका जानना-मानना वैसा ही है जैसे बिना पानी के तालाब और नदियाँ । सारांश यह कि भगवत्-प्रेम-विहीन सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं । 3 ।

मुक्ति के अनेक मार्ग हैं और भाँति-भाँति के साधन हैं, किन्तु हे तुलसी ! तू तो मेरे कहने से दिन-रात केवल राम-नाम का ही जप किया कर (तेरा तो इसी से कल्याण हो जाएगा) । 4 ।

जानकीनाथ, रघुनाथ

जानकीनाथ, रघुनाथ, रागादि-ताम-तरणि, तारुण्यतनु, तेजधामं ।
सच्चिदानंद, आनंदकंदाकरं, विश्व-विश्राम, रामाभिरामं । 1 ।
नीलनव-वारिधर-सुभग-शुभकान्ति, कटि पीत कौशेय वर वसनधारी ।
रत्न-हाटक-जटित-मुकुट-मंडित-मौली, भानु-शत-सदृश उद्योतकारी ।
2।
श्रवण कुंडल, भाल तिलक, भ्रूरुचिर अति, अरुण अम्भोज लोचन विशालं।
वक्र-अवलोक, त्रैलोक-शोकापहं, मार-रिपु-हृदय-मानस-मरालं । 3 ।
नासिका चारु सुकपोल, द्विज वज्रदुति, अधर बिंबोपमा, मधुरहासं ।

कंठ दर, चिबुक वर, वचन गंभीरतर, सत्य-संकल्प, सुरत्रस-नासं । 4।
सुमन सुविचित्र नव तुलसिकादल-युतं मृदुल वनमाल उर भ्राजमानं ।
भ्रमत आमोदवश मत्त मधुकर-निकर, मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं । 5 ।
सुभग श्रीवत्स, केयूर, कंकण, हार, किंकिणी-रटनि कटि-तट रसालं ।
वाम दिसि जनकजासीन-सिंहासनं कनक-मृदु वल्लिवत तरु तमालं । 6।
अजानु भुजदंड कोदंड-मंडित वाम बाहु, दक्षिण पाणि बाणमेकं ।
अखिल मुनि-निकर, सुर, सिद्ध, गन्धर्व वर नमत नर नाग अवनिप अनेकं । 7 ।
अनघ, अविछिन्न, सर्वज्ञ, सर्वेश, खलु सर्वतोभद्र-दातोसमाकं ।
प्रणतजन-खेद-विच्छेद-विद्या-निपुण नौमि श्रीराम सौमित्रिसाकं । 8 ।
युगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालयं, चिह्न कुलिशादि शोभाति भारी ।
हनुमत-हृदि विमल कृत परममंदिर, सदा दासतुलसी-शरण शोकहारी । 9।

हौं रघुबंसमनि को दूत.....

मातु मानु प्रतीति जानकि ! जानि मारुतपूत । 1 ।
मैं सुनी बातैं असैली, जे कही निसिचर नीच ।
क्यों न मारै गाल, बैठो काल-डाढ़नि बीच । 2 ।
निदरि अरि, रघुबीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज ।
डरौं आयसु-भंगतें, अरु बिगरिहै सुरकाज । 3 ।
बाँधि बारिधि, साधि रिपु, दिन चारिमें दोउ बीर ।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल सँग, जननि ! उर धरु धीर । 4 ।
चित्रकूट-कथा, कुसल कहि सीस नायो कीस ।
सुहृद-सेवक नाथको लखि दई अचल असीस । 5 ।
भये सीतल स्त्रवन-तन-मन सुने बचन-पियूष ।
दास तुलसी रही नयननि दरसहीकी भूख । 6 ।

माता जानकी ! विश्वास करो, मैं रघुवंशमणि भगवन राम का दूत हूँ, मुझे साक्षात् पवनपुत्र समझो । 1 ।

नीच निशाचर रावन ने जो अंड-बंड बातें कहीं हैं, वे मैंने सब सुन ली हैं। वह कालकी दाढों के बीच पड़ा हुआ है, फिर बैठा-बैठा इस प्रकार गाल क्यों न बजावेगा । 2 ।

मैं रघुनाथजी की कृपा से आज ही शत्रु का तिरस्कार कर हठपूर्वक तुम्हे ले जा सकता हूँ, किन्तु स्वामी की आज्ञा भंग करने से डरता हूँ और इससे देवताओं का काम भी बिगड़ता है । 3 ।

मात: ! तुम हृदय में धैर्य धारण करो, दोनों भाई चार दिन पीछे ही समुद्र पर पुल बाँध, शत्रु को परास्त कर रीछ और वानरों की सेना के सहित तुमसे मिलेंगे । 4 ।

फिर हनुमान जी ने चित्रकूट की कथा और रघुनाथ जी की कुशल कह उन्हें सर नवाया। इससे उन्हें स्वामी का प्रिय दास समझकर सीता जी ने अटल आशीर्वाद दिया । 5 ।

हनुमान जी के वचनामृत सुनकर सीता जी के कान, शरीर और हृदय तो शीतल हो गए, अब नेत्रों को केवल भगवान के दर्शानों की भूख रह गयी है । 6 ।

यह बिनती रघुबीर गुसाई ..
यह बिनती रघुबीर गुसाई ।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई । 1 ।
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई । 2 ।
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाई । 3 ।
या जगमेँ जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाई । 4 ।

हे रघुनाथ जी ! हे नाथ ! मेरी विनती है कि इस जीव को दूसरे साधन, देवता या कर्मो पर जो आशा, विश्वास और भरोसा है, उस मूर्खता को आप हर लीजिये । 1 ।

हे राम ! मैं शुभगति, सद्‌बुद्धि, धन-संपत्ति, ऋद्धि-सिद्धि और बड़ी भारी बड़ाई आदि कुछ भी नहीं चाहता। बस, मेरा तो आपके चरण-कमलों में दिनोंदिन अधिक-से-अधिक अनन्य और विशुद्ध प्रेम बढ़ता रहे, यही चाहता हूँ । 2 ।

मुझे अपने बुरे कर्म जबरदस्ती जिस-जिस योनि में ले जाएँ, उस-उस योनि में ही हे नाथ ! जैसे कछुआ अपने अण्डों को नहीं छोड़ता, वैसे ही आप पलभर के लिए भी अपनी कृपा न छोड़ना । 3 ।

हे नाथ ! इस संसार में जहां तक इस शरीरका (स्त्री-पुत्र-परिवारादिसे) प्रेम, विश्वास और सम्बन्ध है, सो सब एक ही स्थान पर सिमटकर केवल आपसे ही हो जाये । 4 ।

!! श्रीरामदूताय नमो नमः !!

हे हरि! कवन जतन भ्रम भागै ।
देखत, सुनत, बिचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै । 1 ।
भगति-ग्यान-बैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।
कोउ भल कहउ, देउ कछु, असि बासना न उरते जाई । 2 ।
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।
निज करनी बिपरीत देखि मोहिं समुझि महा भय लागै । 3 ।
जद्यपि भग्न-मनोरथ बिधिबस, सुख इच्छत, दुख पावै ।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै । 4 ।
हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे ।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख, हरे बनिहिं प्रभु तोरे । 5 ।

हे हरे! मेरा यह (संसार को सत्, नित्य पवित्र और सुख रूप मानने का) भ्रम किस उपाय से दूर होगा? देखता है, सुनता है, सोचता है, फिर भी मेरा यह मन अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। (और संसार को सत्य सुख रूप मानकर बार-बार विषयों में फंसता है) । 1 ।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी साधन इस मन को शांत करने के उपाय हैं, परन्तु मेरे हृदय से तो यही वासना कभी नहीं जाती कि 'कोई मुझे अच्छा कहे' अथवा 'मुझे कुछ दे' (ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के साधकों के मन में भी प्रायः बड़ाई और धन-मान पाने की वासना बनी ही रहती है) । 2 ।

जिस (संसाररूपी) रात में सब जीव सोते हैं उसमें केवल आपका कृपापात्र जन जागता है। किन्तु मुझे तो अपनी करनी को बिल्कुल ही विपरीत देखकर बड़ा भारी भय लग रहा है । 3 ।

यद्यपि दैववश- प्रारब्धवश मनुष्यके सारे मनोरथ नष्ट हो जाते हैं, सांसारिक सुख उसके भाग्य में (पूर्व सुकृति के अभाव से) लिखे ही नहीं गए. तथापि वह सुखों की इच्छा मात्र कर वैसे ही दुःख पाता है जैसे कोई बिना हाथ का चित्रकार (केवल मनःकल्पित) चित्रों से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है और भग्नमनोरथ होकर दुःख पाता है (उसी प्रकार मैं भी भजन साधन रूप सुकृत किये बिना ही यों ही सुख चाहता हूँ)। 4 ।

आपका हृषिकेश (इन्द्रियों के स्वामी) नाम सुनकर मैं आपकी बलैया लेता हूँ। मेरे मन में आपका अत्यंत भरोसा है। तुलसीदास इन्द्रियजन्य दु:ख आपको अवश्य नष्ट करना ही पड़ेगा । 5 ।

तोसो हौं फिरि फिरि हित ..

तोसो हौं फिरि फिरि हित, प्रिय, पुनीत सत्य बचन कहत ।
सुनि मन, गुनि, समुझि, क्यों न सुगम सुमग गहत । 1 ।
छोटो बड़ो, खोटो खरो, जग जो जहँ रहत ।
अपनो अपनेको भलो कहहु, को न चहत । 2 ।
बिधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत ।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत । 3 ।
बिषय मुद निहार भार सिर काँधे ज्यों बहत ।
योंही जिय जानि, मानि सठ ! तू साँसति सहत । 4 ।
पायो केहि घृत बिचारु, हरिन-बारि महत ।
तुलसी तकु ताहि सरन, जाते सब लहत । 5 ।

अरे जीव ! मैं तुझसे बार-बार हितकारी, प्रिय, पवित्र और सत्य वचन कहता हूँ, इन्हें सुनकर, मन में विचारकर और समझकर भी तू सुगम और सुन्दर रास्ता क्यों नहीं पकड़ता ? अर्थात् श्रीराम की शरण क्यों नहीं हो जाता ? । 1।

छोटा-बड़ा, खोटा-खरा, जो यहाँ संसार में रहता है, उनमें बता, ऐसा कौन है, जो अपना भला न चाहता हो ? । 2 ।

ब्रह्मा से लेकर छोटे-छोटे कीड़े तक सुख से सुखी होते हैं और दु:ख से जलते हैं, पशुपालक ग्वाले की तरह परमात्मा जीवरूपी पशुओं को (अज्ञान से) बांधता, (ज्ञान से) खोलता और उन्हें (कर्मों में) जोतता है । 3 ।

विषयों के सुखों को देख. वे तो सर के बोझे को कंधे पर रखने के सामान हैं। अर्थात् विषय-सुख में सुख है ही नहीं, इस तरह मन में समझकर मान जा। अरे मूर्ख ! क्यों कष्ट सह रहा है ? । 4 ।

तनिक विचार तो कर, मृगतृष्णा के जल को मथकर किसने घी पाया है ? अर्थात् असत संसार के काल्पनिक पदार्थों में सच्चा सुख कैसे मिल सकता है ? हे तुलसी ! तू तो उसी प्रभु की शरण में जा, जिससे सब कुछ प्राप्त होता है । 5 ।

ताते हौं बार बार देव ! ..

ताते हौं बार बार देव ! द्वार परि पुकार करत ।

आरति, नति, दीनता कहें प्रभु संकट हरत । 1 ।
लोकपाल सोक-बिकल रावन-डर डरत ।
का सुनि सकुचे कृपालु नर-सरीर धरत । 2 ।
कौसिक, मुनि-तीय, जनक सोच-अनल जरत ।
साधन केहि सीतल भये, सो न समुझि परत । 3 ।
केवट, खग, सबरि सहज चरनकमल न रत ।
सनमुख तोहिं होत नाथ ! कुतरु सुफरु फरत । 4 ।
बंधु-बैर कपि-बिभीषन गुरु गलानि गरत ।
सेवा केहि रीझि राम, किये सरिस भरत । 5 ।
सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।
ताको लिये नाम राम सबको सुढर ढरत । 6 ।
जाने बिनु राम-रीति पचि पचि जग मरत ।
परिहरि छल सरन गये तुलसिहु-से तरत । 7 ।

हे नाथ ! मैं तुम्हारे इसी स्वभाव को जानकर द्वार पर पड़ा हुआ बार-बार पुकार रहा हूँ कि हे प्रभो ! तुम दु:ख, नम्रता और दीनता सुनाते ही सारे संकट हर लेते हो । 1 ।

जब रावण के भय के मारे इंद्र, कुबेर आदि लोकपाल डरकर शोक से व्याकुल हो गए थे, तब हे कृपालु ! तुमने क्या सुनकर संकोच से नर शरीर धारण किया था? । 2 ।

यह समझ में नहीं आता कि जो विश्वामित्र, अहिल्या और जनक चिंता की अग्नि में जले जा रहे थे, वे किस साधन से शीतल हो गए ? । 3 ।

गुह निषाद, पक्षी (जटायु, शबरी आदि स्वभाव से ही तुम्हारे चरण-कमलों में रत नहीं थे) किन्तु हे नाथ ! तुम्हारे सामने आते ही (इन) बुरे-बुरे वृक्षों में भी अच्छे-अच्छे फल-फल गए ! भाव यह कि निषाद, शबरी आदि पापी भी तुम्हारी शरणागति से तर गए ६ 4 ६

अपने-अपने भाई के साथ शत्रुता करने से सुग्रीव और विभीषण बड़े भारी दु:ख से गले जाते थे। हे राम जी ! तुमने किस सेवा से रीझकर उन्हें भरत जी के समान मान लिया । 5 ।

हनुमान जी तुम्हारी सेवा करते-करते तुम्हारे ही समान हो गए । हे राम जी ! उन (हनुमान जी) का नाम लेते ही तुम सब पर भली-भाँति प्रसन्न हो जाते हो । 6 ।

(यह सब क्यों हुआ ? दु:ख, नम्रता और दीनता के कारण ही तुमने ऐसा किया) इसलिए हे नाथ ! तुम्हारी (रीझने की) रीति न जानने के कारण ही जगत अन्यान्य साधनों में पच-पचकर मर रहा है । तुम दुखियों, नम्रों और दीनों पर प्रसन्न होते हो यह जानकर, जो तुम्हारी शरण हो जाये वह तो तर ही जाता है, क्योंकि कपट छोड़कर तुम्हारी शरण में जाने से तुलसी- जैसे जीव भी तो संसार-सागर से तर गए ।7।

❐❐❐